ज्ञान-कथाकुञ्ज

(आचार्य श्री ज्ञान सागर वाङ्मय पर आधारित)

प्रेरक

पूज्य श्री १०८ सुधासागर जी महाराज

लेखक

डॉ कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन'

बॉसातारखेडा (दमोह) म०प्र०

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन साहित्य-संस्कृति-संरक्षण समिति

डी—३०२, विवेक—विहार

दिल्ली—११००६५, फोन न० २१५२२४४

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन साहित्य-सस्कृति-सरक्षण समिति

डी–३०२ विवेक विहार दिल्ली–६५

प्राप्ति स्थान

१ श्री० दि० जैन साहित्य सस्कृति स० समिति
डी–३०२ विवेक विहार दिल्ली–६५

२ साहित्य विक्रय केन्द्र
श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र
श्रीमहावीरजी (सवाईमाधैपुर) राजस्थान

सस्करण प्रथम ईसवी १६६६

प्रतियॉ १०००

सस्करण द्वितीय, ईसवी १६६८,

प्रतियॉ १०००

मूल्य दस रूपये

ISBN 81–900470–5–1

प्रकाशकीय

प्राचीन काल से ही भारत वसुन्धरा ने अनेक महापुरूषो एव नरपुगवो को जन्म दिया है। इन नर-रत्नो ने भारत के सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक आध्यात्मिक एव शौर्यता के क्षेत्र मे अनेको कीर्तिमान स्थापित किये हैं। जैनधर्म भी भारत भूमि का एक प्रचीन धर्म है, जहाँ तीर्थंकर, श्रुतकेवली, केवली भगवान के साथ-साथ अनेको आचार्यो मुनियो एव सन्तो ने इस धर्म का अनुसरण कर मानव समाज के लिए मुक्ति एव आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है।

इस १६-२०वी शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य परम पूज्य चरित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री शातिसागर जी महाराज थे जिनकी परम्परा मे आचार्य श्री वीरसागरजी आचार्य श्री शिवसागरजी इत्यादि तपस्वी साधुगण हुये। मुनि श्री ज्ञानसागरजी आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य थे।

मुनि श्री ज्ञानसागर जी का जन्म राणोली ग्राम (सीकर-राजस्थान) मे दिगम्बर जैन छावडा कुल मे सेठ सुखदेव जी के पुत्र श्री चतुर्भुज जी की ध र्म पत्नी घृतावरी देवी की कोख से हुआ था। आप स्वय भूरामल के नाम से विख्यात हुए। बचपन मे ही ज्ञान अर्जन की ललक होने के कारण सस्कृत-विद्या व जैन-दर्शन मे प्रवेश करने के लिए स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस मे शास्त्री तक अध्ययन किया। अध्ययन के उपरान्त साहित्य-सृजन का लक्ष्य बनाया तथा आत्म-उत्थान हेतु बालब्रह्मचारी रहने का सकल्प किया। ब्रह्मचारी बनकर सस्कृत साहित्य के लेखन करने मे इतने निमग्न हो गये कि चार-चार महाकाव्यो सहित सस्कृत एव हिन्दी भाषा मे तीस ग्रन्थ लिखे।

'ज्ञान भार क्रिया बिना" क्रिया के बिना ज्ञान भार-स्वरूप है-इस मत्र को जीवन मे उतारने हेतु आप त्याग-मार्ग पर प्रवृत्त हुए। सर्वप्रथम आप ने देशव्रत रूप क्षुल्लक दशा को धारण किया। तदुपरात चारित्र का चरमोत्तम पद महाव्रत रूप दिगम्बरी दीक्षा धारण की तथा आचार्य वीरसागर आचार्य शिवसागर महाराज के सघ को पठन-पाठन कराते हुए उपाध्याय पद से सुशोभित हुए। इस के बाद आचार्य पद को ग्रहण करके कई भव्य प्राणियो को मोक्ष-मार्ग का उपदेश प्रदान कर अनेको मुमुक्षओ को मुनि दीक्षा से उपकृत किया। इन्हीं शिष्यो मे प्रथम शिष्य आज सारे विश्व के साधुओ मे श्रेष्ठता को प्राप्त हो गए जिन्हे दुनिया आचार्य श्री विद्यासागर जी के नाम से जानती है। यह आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की महानता थी कि उन्होने अपनी सज्वलन कषाय की मन्दता का सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया था। आगमानुसार आ० श्री ज्ञानसागर जी ने आचार्य पदत्याग की घोषणा की तथा अपने सर्वोत्तम योग्य शिष्य मुनि श्री

विद्यासागर जी को समाज के समक्ष अपना गुरुत्तर भार एव आचार्य पद देने की स्वीकृति मान कर उन्हे पद से विभूषित किया।

जीवन के अन्त मे लगभग १८० दिन की सल्लेखना धारण की। अत मे चार दिन तक चतुर्विध आहार के त्याग के साथ १ जून १९७३ ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को प्रात १० बजकर ५० मिनट पर नसीराबाद (राज) मे नश्वर शरीर को त्याग कर ससार का अत करनेवाली समाधि को प्राप्त हुए अर्थात् समाधिस्थ हो गये।

इनके द्वारा रचित २९ ग्रन्थ जो सस्कृत–हिन्दी म लिखे गये है उन ग्रन्थो मे जहॉ आवश्यक समझा है वहॉ कथाओ का प्रयोग किया है। कथाओ क माध्यम से दिया गया उपदश प्रभावशाली होता है। उसे श्रोता रूचिपूर्वक सुनता हे समझता है।

हमारे आराध्य पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम सुयोग्य शिष्य पूज्य मुनि १०८ सुधासागर जी महाराज के ससघ सानिध्य मे किशनगढ (राज) मे १९९५ के वर्षायोग के अवसर पर आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा रचित जयोदय महाकाव्य पर चतुर्थ राष्ट्रीय विद्वत्त सगोष्ठी हुई जिसमे शताधिक विद्वान उपस्थित हुए और निर्णय लिया गया कि आचार्य ज्ञानसागर क समस्त वाडमय मे प्रतिपादित कथाओ का चयन कर उनका रामालोचनात्मक अध्ययन कराया जाये। यह कार्य डॉ कस्तूर चन्द्र सुमन प्रभारी जेन विद्यासस्थान श्रीमहावीरजी को सोपा गया।

कोशकार डॉ सुमन ने स्व आचार्य ज्ञानसागर वाडमय का अध्ययन कर जिन कथात्मक रत्ना को पाया है व प्रस्तुत पुस्तक मे पाठको का समर्पित किये गये है। डॉ सुमन इरा रचना के लिए सम्मान क पात्र हे।

इस कृति का प्रथम सस्करण स्वल्पावधि मे पूर्ण हो गया अत यह द्वितीय सस्करण पाठका की सेवा मे प्रस्तुत हे इसका अध्ययन कर मुमुक्षुजन स्व–पर कल्याण मे प्रवृत्त हा यही प्रभु से प्रार्थना है। इस प्रकाशन मे कागज प्रदान कर श्रीमति कुसम जेन डी–५१ श्रेष्ठ विहार (घरौदा अपार्टमेन्टस) दिल्ली–९२ ने जो योगदान दिया है उसके लिए हम उनको धन्यवाद देते हे।

बीना–इटावा
सागर (म०प्र०)–४७०११३
५–१२–९८

डा० दरबारीलाल कोठिया
अध्यक्ष
श्री दिगम्बर जेन सा० स० सरक्षण समिति
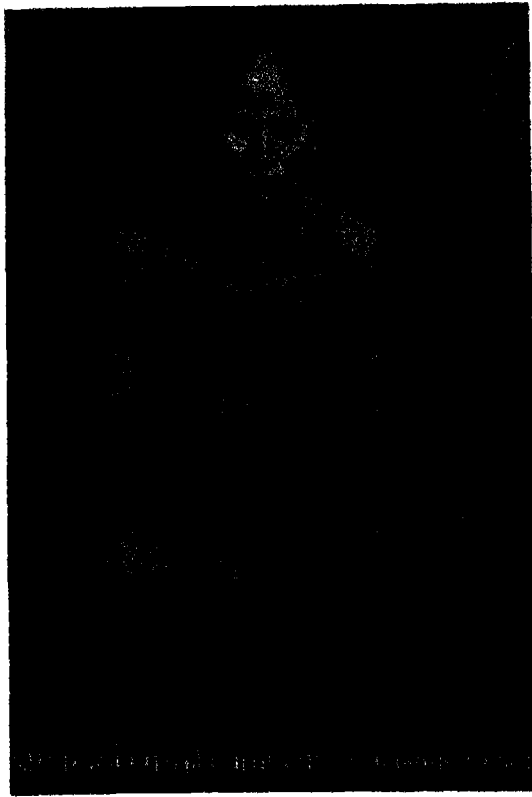
श्री दिगम्बर जैन महाकवि आचार्य
श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज

परम पूज्य आचार्यश्री 108 विद्यासागर जी महाराज

पूज्य १०८ मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

: प्रस्तावना :

महाकवि आचार्य ज्ञानसागर-वाङ्मय में प्रतिपादित कथाओं का तुलनात्मक एव समीक्षात्मक अध्ययन

महाकवि स्व० आचार्य ज्ञानसागर महाराज इस शताब्दी के महान् सन्त थे। उत्कृष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट तप दोनो की वे समान्वित मूर्ति थे। उन्होने साधना करते हुए उच्चकोटि के साहित्य का सृजन किया है। उनकी रचनाओ मे नौ रचनाएँ प्रौढ सस्कृत भाषा मे निबद्ध प्राप्त हुई है। रचनाओ के नाम निम्न प्रकार है।

१	जयोदय महाकाव्य	सर्ग २८	श्लोक ३०७४
२	वीरोदय महाकाव्य	सर्ग २२	श्लोक ६६४
३	सुदर्शनोदय	सर्ग ६	श्लोक ४८१
४	भद्रोदय	सर्ग ६	श्लोक ३४४
५	दयोदय (चम्पूकाव्य)	लम्ब ७	
६	सम्यक्त्वसार शतक		श्लोक १०४
७	मुनिमनोरञ्जनाशीति		श्लोक ८१
८	भक्तिसग्रह		श्लोक १०१
६	हित–सम्पादक		श्लोक १५६

आचार्य श्री के सस्कृत-भाषा मे ही सृजित ग्रन्थ नही मिले है, अपितु मातृभाषा हिन्दी मे भी उनकी रचनाएँ साहित्यिक गद्य–पद्य दोनो विधाओं मे प्राप्त हुई है। पद्यात्मक रचनाएँ निम्न प्रकार है–

१०	भाग्य–परीक्षा	पद्य ८३८
११	गुण सुन्दरवृत्तान्त	पद्य ५६५
१२	पवित्र मानव जीवन	पद्य १६३
१३	ऋृषभचरित्र	पद्य ८१४

गद्य मे लिखी गयी तीन रचनाएँ है–

१४ सचित्त विवेचन

१५ सचित्त विचार

१६ स्वामी कुन्दकुन्द एव सनातन जैनधर्म

आचार्य श्री की एक रचना ऐसी भी उपलब्ध हुई है जिसमे सस्कृत और हिन्दी दोनो भाषाओ का तथा गद्य–पद्य दोनो साहित्यिक विधाओ का प्रयोग हुआ है। रचना है –

१७ सरल जैन विवाह विधि

आचार्य श्री ने जैन दर्शन की कतिपय प्रसिद्ध प्राचीन रचनाओ पर टीकाएँ भी लिखी है। वे रचनाएँ है–

१८ समयसार

१९ रत्नकरण्डश्रावकाचार (मानवधर्म)

२० विवेकोदय (समयसार की प्रसिद्ध गाथाओ पर गद्य–पद्यात्मक हिन्दी व्याख्या)

२१ तत्त्वार्थसूत्र

२२ प्रवचनसार

एक रचना का आचार्य श्री ने सम्पादन भी किया है। रचना का नाम है–

२३ शान्तिनाथ – पूजन – विधान

आचार्य श्री की एक रचना उपदेशात्मक भी है जिसमे ८२ विषयो पर आचार्य श्री का चिन्तन गर्भित है। विषयो को हृदयग्राही बनाने के लिए आचार्य श्री ने कथाओ का प्रयोग किया है। नैतिकता के निर्माण मे इस पुस्तक का महत्त्वपूर्ण योगदान है। पुस्तक का नाम है –

२४ कर्त्तव्य-पथ-प्रदर्शन।

इन रचनाओ का तो प्रकाशन हो चुका है। तीन ऐसी रचनाओ की भी जानकारी प्राप्त हुई है जो अब तक अप्रकाशित है। ये तीनो रचनाएँ पद्यानुवाद है। जिन पुस्तको का अनुवाद किया गया है वे पुस्तके है।

२५ देवागमस्तोत्र

२६ नियमसार

२७ अष्टपाहुड

आचार्य श्री की पूर्वोल्लिखित प्राप्त चौबीस रचनाओ मे ग्यारह रचनाएँ ऐसी है, जिनमे कथाओ का व्यवहार हुआ है। वे रचनाएँ है –

१ कर्त्तव्य-पथ,-प्रदर्शन

२ गुण–सुन्दर–वृत्तान्त

३ ऋृषभचरित्र

४ मानवधर्म

५ स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैनधर्म

६ हित-सम्पादक

७ दयोदय

८ भाग्यपरीक्षा

६ समुद्रदत्त-चरित्र

१० सुदर्शनोदय

११ जयोदय

इन रचनाओ मे कर्त्तव्य-पथ-प्रदर्शन से १८, गुण–सुन्दर वृत्तान्त से १५, ऋृषभचरित्र से ४, मानवधर्म से ४, और शेष अन्य सभी रचनाओ से केवल एक–एक कथा प्राप्त हुई है। कुल प्राप्त कथाएँ अडतालीस हैं।

कथाओ की सख्या आचार्य मानतुग का स्मरण कराती है। आचार्य मानतुग को जैसे अडतालीस तालो के द्वारा बन्द किया गया था। उनके वे ताले भक्तामर के एक एक काव्य सृजित होते ही टूटते गये और आचार्य अडतालीसवे काव्य के बनते ही निर्वन्ध हो गये। ऐसी ही अनुमानत ये कथाएँ है। इन कथाओ से सम्बन्धित विषयो को समझकर और तदनुकूल आचरण करके जीव कर्म–बन्धनो को तोडकर निर्बन्ध हो सकता है।

ये कथाएँ दो प्रकार की हैं– पौराणिक और अनुभवजनित। पौराणिक कथाएँ निम्न प्रकार है –

१ रानी का अविवेक

२ भाई–भाई का वैर–स्नेह

३ कुलटा–नेही यशोधर

४ देह-सौन्दर्य-परीक्षा

५ भव-रोगो की नहीं औषधि

६ होनी होके ही रहे

७ मतिवर-ग्वाला

८ अवसरोचित बात

६ वाणी-सयम-लाभप्रद

१० वैरागी का ब्याह
११ मदनसुन्दरी की पति-सेवा
१२ भावो का है खेल जगत मे
१३ साधु-दृष्टि
१४ दृढ सकल्पी भील
१५ राज्यभोग की लालसा
१६ अविवेकी पिता विवेकी पुत्र
१७ अतिलोभी को सुख नही
१८ पिता का पुत्र–स्नेह
१९ पात्र–दान की महिमा न्यारी
२० पाप कटे व्रत किये से
२१ मृगसेन धीवर व्रत–फल
२२ पुण्यात्मा धन्यकुमार
२३ सत्यघोष की सत्य-परीक्षा
२४ अद्‌भुत् शील सुदर्शन का
२५ नारी–सग मे सुख नही

अनुभव जनित वे कथाएँ ज्ञात होती है जो या तो आचार्य द्वारा सृजित है अथवा श्रवित है। ऐसी कथाएँ निम्न प्रकार है –

१ कौटुम्बिक जीवन की झॉकी
२ सगी बहिन भी स्वार्थ मय
३ लक्ष्मी सर्वत्र पूज्यते
४ भोगो की कुटिलाई
५ खुद को नही सम्हाला हमने
६ जैसी करनी वैसी भरनी
७ जीवन क्षणभगुर है भाई
८ परिवार–परीक्षा
९ बुद्धिमान राजा बुद्धिमान चोर

१० गुण अवगुण सगति फले

११ दयावान युवराज्ञी

१२ खाओ सब मिल बाँटकर

१३ नहीं व्यर्थ कोई वस्तु है

१४ बुरा जो सोचे और का उसका पहले होय

१५ काम कराने की कला

१६ जैसी बनी बना हो वैसा

१७ निन्यान्नवे का फेर

१८ बुरी नियत का बुरा नतीजा

१६ उदारता का मधुर फल

२० जैसी आवक वैसी जावक

२१ ज्ञान बिना चिन्तामणि पत्थर

२२ निज बोध बिना है सिह स्यार

२३ छिपे न साँचा प्रेम

कथा-स्वरूप

इन कथाओ को जानने–समझने के लिए कथा की परिभाषा समझना आवश्यक प्रतीत होती है। न्यायदीपिका पृष्ठ ४१ की एक टिप्पणी मे– "अनेक प्रवक्ताओ के विचारो का जो विषय या पदार्थ है, उनके वाक्य सन्दर्भ का नाम कथा कहा गया है।[१] न्यायसार नामक ग्रन्थ मे– "वादी प्रतिवादियो के पक्ष प्रतिपक्ष के ग्रहण को कथा नाम दिया गया है"।[२] महापुराण मे आचार्य जिनसेन ने मोक्ष पुरूषार्थ के उपयोगी होने से धर्म, अर्थ, और काम पुरूषार्थ को कथा सज्ञा दी है।[३] तप व सयम गुणो के धारक साधु जो समस्त लोक के प्राणियो के लिए हितकर चरित्र का निरूपण करते है, उसे भी कथा कहा गया है।[४] द्रव्य, फल प्रकृति, क्षेत्र तीर्थ, काल और भाव इन सप्त भेदो से युक्त वाक्य विन्यास को भी कथा सज्ञा दी गयी है।[५]

कथा-भेद

न्यायसार मे कथा के दो भेद कहे गये है– वीतराग कथा और विजिगीषु कथा। इनमे वादी, प्रतिवादी मे अपने पक्ष को स्थापित करने के लिए जीत हार होने तक जो परस्पर मे वचनप्रवृत्ति या चर्चा होती है वह विजिगीषु कथा है

और गुरु तथा शिष्य मे अथवा रागद्वेष रहित विशेष विद्वानो मे तत्त्व के निर्णय होने तक जो चर्चा चलती है वह वीतराग–कथा है।[६]

---

१ नाना प्रवक्तृत्वे सति तद्विचारवस्तुविषया वाक्य सपद्लब्धि कथा। जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग २ पृ० २।

२ पक्ष प्रतिपक्ष परिग्रह कथा। वही

३ पुरुषार्थोपयोगित्वात्त्रिवर्ग कथन कथा।
आचार्य जिनसेन, महापुराण १, ११८।

४ तव सजम गुणधारी ज चरण कहिंति सब्भाव।
सव्वजगजीवहिय सा उ कहा देसिया समए।।
दशवैकालिक नि० २१०

५ द्रव्य फलप्रकृतमेव हि सप्त भेद
क्षेत्र च तीर्थमथ कालविभाग भावौ।
अगानि सप्त कथयन्ति कथा प्रबन्धे
तै सयुता भवति युक्ति मती कथा सा।।
वरागचरित १६।

६ जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग २, पृ० २।

आचार्य जिनसेन ने कथा के तीन भेद बताये हैं– सत्कथा, विकथा और धर्मकथा। इनमे जिससे जीवो को स्वर्गादि अभ्युदय तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, वास्तव मे वही धर्म कहलाती है। उससे सम्बन्ध रखनेवाली कथा को सद्धर्मकथा कहते है। जिसमे धर्म का विशेष निरूपण होता है उसे बुद्धिमान पुरूष सत्कथा कहते है।[1] विकथाएँ चार प्रकार की कही गयी हैं–स्त्रीकथा, राजकथा, चोरकथा और भक्तकथा।[2] धर्मकथा के चार भेद बताये हैं– आक्षेपिणी, निक्षेपिणी सवेजनी और निर्वेदनी। इनमे अन्य मत–मतान्तरो की आलोचना करने वाली आक्षेपिणी, स्वकीय तत्त्व का निरूपण करने मे निपुण निक्षेपिणी ससार से भय उत्पन्न करनेवाली सवेजिनी और भोगो से वैराग्य उत्पन्न करनेवाली निर्वेदिनी कथा कही गयी है।[3]

ज्ञानसागर–वाड्मय मे प्रतिपादित सभी कथाएँ धार्मिक है। इन्हे आक्षेपिनी, निक्षेपिणी, सवेजिनी और निर्वेदिनी के भेद से चार भागो मे विभाजित किया जा सकता है।

आचार्य ने आक्षेपिणी कथाओ का प्रयोग नही किया है। सभवत आलोचना से वे दूर रहना चाहते थे। निक्षेपिणी कथाओ मे निम्न कथाएँ कही जा सकती है–

१ अवसरोचित बात

२ नही व्यर्थ कोई वस्तु है

३ भव रोगो की नही औषधि

४ होनी होके ही रहे

५ पाप कटे व्रत किये से

६ सत्यघोष की सत्य परीक्षा

७ अद्‌भुद शील सुदर्शन का

८ नारी सग मे सुख नही

६ खुद को नही सम्हाला हमने

---

१ तत्रापि सत्कथा धर्म्यामामनन्ति मनीषिण ।
यतोऽभ्युदयनि श्रेय सार्थससिद्धिरञ्जसा
सद्धर्मस्तन्निबद्धा या सा सद्धर्मकथा स्मृता।।
महापुराण १ ११६-१२०।

२ थी राजचोर भक्त कहा दिवयणस्स पावहेउस्स।

नियमसार

३ आक्षेपिणी पराक्षेपकारिणीमकरोत् कथाम्।
ततो निक्षेपणीं तत्त्वमत निक्षेप कोविदाम्।।
सवेजिनी च ससार भय प्रचय बोधनीम्।
निर्वेदिनी तथा पुण्या भोगवैराग्य कारिणीम्।।
पद्मपुराण पर्व १०६ श्लोक ९२-९३।

ससार से भय उत्पन्न करनेवाली सवेजिनी कथाओ में निम्न कथाएँ कही जा सकती हैं–

१ वाणी सयम लाभप्रद

२ मदनसुन्दरी की पति–सेवा

३ रानी का अविवेक

४ देह सौन्दर्य परीक्षा

५ कौटुम्बिक जीवन की झाकी

६ सगी बहिन भी स्वार्थमय

७ जैसी करनी वैसी भरनी

८ जीवन क्षणभगुर है भाई

९ परिवार–परीक्षा

१० बुद्धिमान राजा बुद्धिमान चोर

११ गुण अवगुण सगति फले

१२ दयावान युवराज्ञी

१३ खाओ सब मिल बाटकर

भोगो से वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथाओ का भी ज्ञानसागर–वाड्मय मे प्रयोग हुआ है। ऐसी कथाएँ पॉच है–

१ वैरागी का व्याह

२ भाई–भाई का बैर–स्नेह

३ कुलटा–नेही यशोधर

४ राज्यभोग की लालसा

५ भोगो की कुटिलाई

उक्त कथा–भेदो के अतिरिक्त सामान्य नैतिक विषयो से सम्बन्धित कथाएँ भी व्यवह्रत हुई हैं। वे है–

१ मतिवर ग्वाला

२ भावो का है खेल जगत मे

३ साधु दृष्टि

४ दृढ सकल्पी भील

५ अविवेकी पिता विवेकी पुत्र

६ अतिलोभी को सुख नही

७ पिता का पुत्र–स्नेह

८ पात्रदान की महिमा न्यारी

९ मृगसेन धीवर व्रत–फल

१० पुण्यात्मा धन्यकुमार

११ लक्ष्मी सर्वत्र पूज्यते

१२ बुरा जो चेते और का उसका पहले होय

१३ काम कराने की कला

१४ जैसी बनी बना हो वैसा

१५ निन्यान्नवे का फेर

१६ बुरी नियत का बुरा नतीजा

१७ उदारता का मधुर फल

१८ जैसी आवक वैसी जावक

१९ ज्ञान बिना चिन्तामणि पत्थर

२० निज बोध बिना है सिह स्यार

२१ छिपे न साचा प्रेम

(१)

समीक्षा

'रानी का अविवेक शीर्षक कथा ज्ञानसागर वाड्मय मे 'गुण सुन्दर वृत्तान्त नामक रचना के पृष्ठ १७ से २४ पद्य ३० से ६५ से रूपान्तरित की गयी है। इसमे विद्याधर कालसवर की रानी सुभगा को नि सतान बताकर प्रद्युम्न की उसे प्राप्ति और उसके द्वारा उसका लालन–पालन दर्शाकर अन्त मे रानी का उसी पर कामासक्त होना बताया गया है।

इस कथा मे लेखक ने कालसवर को केवल विद्याधरो का नायक कहा है जबकि महापुराण मे इसे विजयार्ध पर्वत की दक्षिणश्रेणी के मेघकूट नगर का विद्याधर राजा कहा गया है। लेखक ने रानी का नाम सुभगा और प्राप्त पुत्र

का नाम प्रद्युम्न लिखा है जबकि महापुराण के अनुसार रानी का नाम काचनमाला और उसके प्राप्त पुत्र का नाम देबदत्त था। युद्धादि का प्रसग समान है। लेखक ने पिता-पुत्र के मध्य युद्ध बताकर पुत्र की विजय दर्शाई है जबकि महापुराण मे कालसवर के पाँच सौ पुत्रो के साथ देवदत्त का युद्ध बताया गया है। इस युद्ध मे देवदत्त का विजयी होना भी लिखा है। देखे जैन पुराणकोश पृष्ठ ८४।

(२)
कौटुम्बिक जीवन की झाकी

यह कथा 'गुण सुन्दर वृत्तान्त-- पुस्तक के पृष्ठ २५-२६, पद्य ३ से १० के "परिवार सब स्वार्थ का है" शीर्षक से रूपान्तरित की गयी है। इसमे एक श्रमजीवी की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है। उसकी पत्नी भी विपत्ति मे उसका साथ नही देती। इस कथा की विषयवस्तु सभवत लेखक की मौलिक देन है। अन्यत्र ऐसा वृत्तान्त पढने मे नहीं आया।

(३)
भाई-भाई का वैर-स्नेह

इस कथा का उल्लेख 'गुण सुन्दर वृत्तान्त रचना के पृष्ठ २८ से ३५ पद्य १८ से ५१ मे हुआ है। इसमे कमठ और मरुभूति का जीवनवृत्त है। कमठ ज्येष्ठ भाई और मरुभूति उसका अनुज था। सचिव पद से रुष्ट होकर कमठ ने मरुभूति की पत्नी अनुधरी का शील भग किया। राजा द्वारा वह देश से निकाला गया। रामगिरि पर उसने पचाग्नि तप किया। मरुभूति के मनान पर उसने पत्थर से उसे मार डाला था।

महापुरण (७३ ६-१४८) मे मरुभूति की पत्नी का नाम वसुन्धरी बताया गया है। प्रस्तुत कथा मे विरोध के कारण का उल्लेख भी हुआ है जिसका महापुराण मे अभाव है।

(४)
सगी बहिन भी स्वार्थ मय

यह कहानी 'गुणसुन्दर वृत्तान्त' पृष्ठ ३५-३८ पद्य ५२-६५ की विषयवस्तु से रूपान्तरित की गयी है। आचार्य श्री ने इस कहानी मे पात्रो के नाम नहीं दिये है। दुर्दिन मे बहिन के भाई के प्रति किये गये दुर्व्यवहार तथा स्वार्थ की झाकी प्रस्तुत करने मे लेखक की सूझ-बूझ सराहनीय है। यह कथावस्तु अन्यत्र उपलब्ध ा न होने से इस कथा के स्रोत आचार्य श्री ही ज्ञात होते हैं।

(५)
"ससार दास है लक्ष्मी का"

यह कहानी 'गुण सुन्दर वृत्तान्त नामक रचना के पृष्ठ ४०–४४ पद्य ८–३२ से रूपान्तरित की गयी है। आचार्य श्री ने इस कहानी मे भी पात्रो के नाम नही दिये है। अनुमानत इस कथा का सृजन भी आचार्य श्री ने ही किया था।

(६)
कुल्टा-नेही यशोधर

इस कहानी की विषयवस्तु का उल्लेख ज्ञानसागर–वाड्मय मे गुणसुन्दर वृत्तान्त' नामक रचना के पृष्ठ ४६–५२ पद्य ३७–७० मे हुआ है। सभवत इस कहानी की विषयवस्तु यशोधरचरित्र से ली गयी है।

(७)
देह-सौन्दर्य परीक्षा

ज्ञानसागर–वाड्मय मे यह कथा 'गुणसुन्दर वृत्तान्त' नामक रचना पृष्ठ ५६–६४ पद्य २८–५६ मे उल्लिखित है। लेखक ने कथा मे चक्रवर्ती सनत्कुमार के सौन्दर्य की परीक्षा का उल्लेख किया है। परीक्षक देवो के नाम नही बताये है।

यह कथा महापुराण (६१ १०४–१२६) पद्मपुराण (२०, १३७–१६३) हरिवशपुरण (४५ १६ ६० २८६, ५०३–५०४) और वीरवर्द्धमानचरित (१८ १०१–१०६) से ली गयी ज्ञात होती है।

महापुराण मे चक्रवर्ती सनत्कुमार अयोध्या के राजा बताये गये है। परीक्षक देवो ने उन्हे कहाँ देखा इसका उल्लेख नही हुआ है। पद्मपुराण मे चक्रवर्ती को हस्तिनापुर का राजा और परीक्षा स्थल स्नानागार बताया गया है। ज्ञानसागर–वाडमय मे चक्रवर्त्ती को हस्तिनापुर का राजा बताया गया है। देवो का राह चलते–चलते वृद्ध हो जाना पुराणो मे नही कहा गया है। ज्ञानसागर वाड्मय की एक और विशेषता है परीक्षक देवो द्वारा अपनी परीक्षा का चक्रवर्ती को प्रमाण देना। इसकी चर्चा पुराणो मे नही की गयी है। अनुमानत इस कथा पर पुराणो का प्रभाव अवश्य है किन्तु सम्पूर्ण कथा का स्रोत पुराण ज्ञात नही होते। लेखक ने सम्पूर्ण वृत्त सभवत अनेक ग्रन्थो से एकत्रित किया है। भट्टारक प्रभाचन्द्र कृत आराधना कथा प्रबन्ध मे इस कथा का उल्लेख 'समता भाव' शीर्षक से किया गया है। परीक्षक देवो के नाम विजय और वैजयन्त बताये गये है।

ब्रह्मचारी श्रीमन्नेमिदत्त कृत आराधना कोश मे भी यह कथा है। चक्री बीतशोकपुरवासी बताया गया है। परीक्षक दैवो के नाम इस कथा मे मणिमाली और रत्नचूल मिलते है।

(८)
भोगों की कुटिलाई

यह कथा ज्ञानसागर–वाङ्मय मे 'गुण सुन्दर वृत्तान्त' नामक रचना के पृष्ठ ६५–६८ पद्य ६१–७६ से ली गयी है। कथा मे माता–पुत्र और भाई–बहिन के भोग सम्बन्ध दर्शाकर भोगो की कुटिलता का दिग्दर्शन कराया गया है। सेठ–सेठानी कहाॅ के निवासी थे तथा उनके क्या नाम थे कहानीकार ने कहानी मे उल्लेख नही किया है। अनुमानत यह कथा आचार्य ज्ञानसागर की देन है। पुराणो मे ऐसी कथा सभवत नही है।

(९)
भव रोगो की नहीं औषधि

इस कथा मे चक्रवर्ती सनत्कुमार के उग्र तपश्चरण की परीक्षा का उल्लेख है। इस परीक्षा का प्रसग पुरणो मे नही है।

यह विषय–वस्तु भट्टारक प्रभाचन्द्र कृत आराधना कथा प्रबन्ध की तीसरी कथा से ग्रहण की गयी ज्ञात होती है। परीक्षक मदनकेतु नामक देव था। यह कथा प्रसिद्ध है। हर स्वध्यायी इसे जानता है। इस कहानी का उल्लेख ज्ञानसागर–वाडमय मे गुणसुन्दर वृत्तान्त' नामक रचना के पृष्ठ ६६–७० पद्य ७६–८७ मे हुआ है। यहाॅ परीक्षक देवो की सख्या दो बताई गई है। उनके नाम नही बताये गये है। ब्रह्मचारी नेमिदत्त कृत आराधना कथा कोश मे परीक्षक देव का नाम मदनकेतु कहा गया है।

(१०)
खुद को नहीं सम्हाला हमने

कहानीकार की यह रूपान्तरित रचना ज्ञात होती है। इसमे दस सख्या का उल्लेख है। बीस सख्या का प्रयोग भी इस कथा मे सुनने मे आया है। आत्मबोध कराने के लिए यह कथा बहुत सुन्दर है। इसका उल्लेख 'गुणसुन्दर वृत्तान्त' नामक रचना के पृष्ठ ७१–७२ पद्य ९०–९२ मे हुआ है।

(११)
जैसी करनी वैसी भरनी

यह कहानी आचार्य श्री की मौलिक रचना ज्ञात होती है। विषयवस्तु एव शैली पौराणिक है। जैसे पुराणो मे जीव का अन्त मे कल्याण होना बताया जाता है ऐसे ही इस कहानी मे भी बताया गया है।

(१२)
जीवन क्षणभगुर है भाई

यह कहानी गुणसुन्दर वृत्तान्त नामक रचना के पुष्ठ ८७–९० पद्य ८–२४ मे दी गयी है। यह कथा कहानीकार की अनुभूत घटना से सृजित है।

(१३)
होनी होके ही रहे

यह कहानी ज्ञानसागर–वाड्मय मे 'गुणसुन्दर वृत्तान्त' रचना मे पृष्ठ ९१–९६ पद्य २६–५० से रूपान्तरित की गयी है। इसमे द्वारिक–दहना की घटना का उल्लेख किया गया है।

इस घटना का उल्लेख भट्टारक प्रभाचन्द्र के आराधना कथा प्रबन्ध' मे अटठावनवी– क्रोध का दुष्परिणाम नामक कथा मे हुआ है। विषय–वस्तु समान है। महापुराण (७२ १७८–१८५, ७६,४७४), हरिवशपुराण (६१ २८–७४, ९०) पाण्डव पुराण (२२ ७८–८५) मे भी इसका उल्लेख हुआ है।

(१४)
परिवार-परीक्षा

यह कथा ज्ञानसागर–वाड्मय मे गुणसुन्दर वृत्तान्त नामक रचना के पृष्ठ ९७–११० पद्य १–६३ से रूपरन्तरिन की गयी है। इसके स्रोत कहानीकार ही ज्ञात होते है। इरामे परिजनो के स्वार्थ की झाकी प्रस्तुत की गयी है। बीमारी के व्याज से प्रत्येक परिजन की परीक्षा करके वैद्य द्वारा बीमार को उसकी मिथ्या कौटुम्बिक–प्रीति का बोध कराया गया है।

(१५)
बुद्धिमान राजा बुद्धिमान चोर

यह कथा गुणसुन्दर वृत्तान्त नामक रचना के पृष्ठ ११३–११६ पद्य १६–४४ से रूपान्तरित की गयी है। इसमे कहानीकार ने राजा का नामाल्लेख

नहीं किया है। कहानी के आरम्भ मे दी गयी चार पक्तियॉ यहॉ विचारणीय है–

ये मन मोहक युवतियाँ तथा मित्र वर्ग अनुकूल सभी।
परिजन तो भी मेरा कहना नहीं गिराते अहो कभी।।
पर्वत जैसे गज तुरग मन तुल्य गमन करनेवाले।
आखे मिची जहॉ न वहाँ कुछ सुन लो तुम हे मतवाले।।

इन पक्तियो मे निम्न श्लोक का हिन्दी अर्थ रूपरन्तरित किया गया ज्ञात होता है–

चेतोहरा युवतय सुहृदोऽनुकूला सद्बान्धवा प्रणयगर्वगिरश्च भृत्या ।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरगा सम्मीलने नयनयोर्नहि किचदस्ति।।

यह श्लोक सदुपदेश दृष्टान्तमालिका भा० २ मे श्री क्षुल्लक शीतलसागर जी महाराज द्वारा सकलित किया गया है। क्षुल्लक जी ने यह घटना धारा नगरी के राजा भोज की बताई है। अत प्रतीत होता है कि आचार्य ज्ञानसागर ने इस श्लोक को ही ध्यान मे रखकर उसे कहानी का स्वरूप दे दिया है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार ने मानवता दुर्लभ है– समझाने का यन्न किया है। उनकी दृष्टि मे देह से तपश्चरण कर शाश्वत सुख पाना श्रेयस्कर है। यह कहानी इसी उद्देश्य के फलस्वरूप लिखी गयी ज्ञात होती है।

(१६)
मतिवर ग्वाला

यह कहानी ज्ञानसागर–वाडमय मे स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैन धर्म नामक रचना से रूपान्तरित की गयी है। इस कहानी मे कुन्दकुन्दाचार्य के पूर्वभव के जीव मतिवर द्वारा शास्त्रदान किये जाने से उसका कुन्दकुन्द के रूप मे जन्म होना दर्शाया गया है। कहानी मे शास्त्रो का महात्म्य उल्लेखनीय है।

(१७)
गुण-अवगुण सगति फले

यह कथा ज्ञानसागर–वाडमय मे कर्त्तव्यपथप्रदर्शन नामक रचना के पृष्ठ ३ सत्सगति का सुफल शीर्षक से रूपान्तरित की गयी है। इस कथा मे अपकारी का उपकार करना राजा का कर्त्तव्य बताया गया है। जन्म से कोई बुरा नहीं होता। आरम्भ से भले या बुरे जैसे की सगति प्राप्त होती है वह वैसा ही हो जाया करता है। यही सिद्धान्त दो तोतो के माध्यम से इस कहानी मे प्रतिपादित किया गया है।

(१८)
अवसरोचित बात

समय के अनुकूल कही गयी बात कार्य सिद्धि मे साधक होती है। पाण्डवो की विजय मे नीति का प्रमुख हाथ रहा है। प्रस्तुत कहानी मे इसी बात का विश्लेषण किया गया है। यह कहानी कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन के पृष्ठ ४ 'सुभाषित ही जीवन है" शीर्षक से रूपान्तरित की गयी है।

(१६)
वाणी सयम लाभप्रद

मानसिक वाचिक और शारीरिक के भेद से सयम तीन प्रकार का होता है। इनमे शारीरिक सयम उतना कठिन नही है जितना वाचिक सयम। मुँह बन्द रखने से वाचिक सयम सरलता से पाला जा सकता है किन्तु मन के आगे यह सयम अपने घुटने टेक देता है। जब-जब ऐसा हुआ सकटो ने जीव को घेरा है। प्रस्तुत कहानी मे एक कछुए की वाक सयम के अभाव मे हुई मरण-दशा का उल्लेख किया गया है। इस कहानी का स्रोत पचतत्र ज्ञात होता है। यह कहानी कर्त्तव्य-पथ- प्रदर्शन के पृष्ठ ५ मे दिये गये व्यर्थवादी की दुर्दशा" शीर्षक से रूपान्तरित की गयी है।

(२०)
वैरागी का व्याह

कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृष्ठ ७ मे साधु समागन शीर्षक से प्रकाशित यह कहानी वैरागी का व्याह नाम से रूपान्तरित की गयी है। इस कथा मे साधु समागम से जम्बूकुमार के जीवन मे चमत्कारिक परिवर्तन दर्शाया गया है। जम्बूकुमार को सुधर्म स्वामी के उपदेश से ऐसा स्थाई वैराग्य उत्पन्न हुआ कि विवाह होने पर भी वह गार्हस्थिक-बन्धन मे नही बॉधा जा सका। इस कथा की इसी विषयवस्तु का उल्लेख महापुराण (७६ ३१-१२१ ५१८-५१६) मे भी किया गया है। कहानी का स्रोत सभवत यही पुराण है।

(२१)
दयावान् युवराज्ञी

दया मानवता का स्रोत है। दया ही परम धर्म है। दयाधारी ही उन्नति के शिखर पर पहुँचता है। प्रस्तुत कहानी मे विषयान्ध एक बडे भाई को छोटे

भाई की पत्नी पाने के लिए छोटे भाई का घातक बताया गया है। बडा भाई राजा और छोटा भाई युवराज था। युवराज्ञी ने दयाभाव से राजा के कुकृत्य की ओर ध्यान न देकर अपने पति युवराज के सुमरण का ही ध्यान रखा। उसने कहा स्वामी! कोई भी किसी का शत्रु या मित्र नहीं है। सब अपने–अपने कर्मो का फल पा रहे है। जैसे साप काचुली छोडकर चला जाता है ऐसे ही युवराज ने अपने शरीर का परित्याग किया और दिव्य देहधारी देव हुआ। यह है दया का प्रभाव। यदि युवराज्ञी ऐसा न करती तो युवराज का सुमरण नही होता और बडे भाई राजा को अपने कृत्य पर न पश्चाताप होता, न वह सन्मार्ग पर लगता। यह कहानी "कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन" के पृष्ठ २०–२२ मे जहाँ दया है वहाँ कोई दुर्गुण नही" शीर्षक से प्रकाशित की गयी है तथा इसे "दयावान् युवराज्ञी" के नाम से रूपान्तरित किया गया है।

(२२)
खाओ सब मिल बाटकर

कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृष्ठ २८ "स्वार्थपरता सर्वनाश की जड है" शीर्षक कहानी को इस शीर्षक से रूपान्तरित किया गया है। इसमे सर्वनाश की जड स्वार्थ दर्शाया गया है।

(२३)
नहीं व्यर्थ कोई वस्तु है

यह कहानी 'कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन नामक रचना के पृष्ठ ३०–३१ मे उपाशक का प्रशम भाव शीर्षक से रूपान्तरित की गयी है। इसमे सभी वस्तुएँ अपनी अपनी जगह मूल्यवान दर्शाई गयी है।

(२४)
मदन-सुन्दरी की पति-सेवा

यह कहानी 'कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन के सवेगभाव (पृष्ठ ३१) शीर्षक से इस नाम से रूपान्तरित की गयी है। इसमे जैनदर्शन की कर्म–व्यवस्था को समझाया गया है कि सुख दुख स्वोपार्जित कर्म–फल है। इसके साथ ही नारी का कर्त्तव्य भी प्रस्तुत कहानी मे दर्शाया गया है। कहा गया है कि पति–सेवा से बढकर नारी–धर्म नहीं। मदनसुन्दरी–कर्त्तव्य परायणा, कर्मसिद्धान्तविज्ञ, पति सेवा सुधर्मा के रूप मे प्रदर्शित की गयी है।

(२५)
'बुरा जो सोचे और का, पहले उसका होय'

यह कहानी 'कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन रचना के आस्तिक्यभाव शीर्षक से इस नाम से रूपान्तरित की गयी है। इस कथा मे पर की बुराई के चिन्तन का फल दर्शाया गया है। कहानी के माध्यम से शिक्षा दी गयी है कि जैसे गाय दूसरो को दूध पिलाकर आबाद करना चाहती है फलस्वरूप वह आबादी मे रहती है और सिह जैसे दूसरो का घात करने मे तत्पर रहता है इसीलिए वह स्वय जगल मे मारा–मारा भटकता है। उसे गाय के समान सुख नही मिलता। अत बुरा मत सोचो। कहा भी है–"बुरी सोच का बुरा नतीजा"।

(२६)
भावो का है खेल जगत मे

यह कहानी 'कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन रचना के हिसा का स्पष्टीकरण शीर्षक से रूपान्तरित की गयी है। इसमे तन्दुल मच्छ के विचारो का फल दर्शाकर भावो का गति–बन्धन मे प्रभाव बताया है।

(२७)
काम कराने की कला

यह कथा कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन रचना के पुराने समय की बात शीर्षक से इस नाम से रूपान्तरित की गयी है। इसमे एक शिक्षित नारी स्वय गृहकार्य करके परिजनो से गृहकार्य कराने मे सफलता पाती हुई दर्शाई गयी है। इस प्रकार स्वय काम करके ही दूसरो से काम लिया जा सकता है यह बात कहानी मे स्पष्ट की गयी है।

(२८)
साधु दृष्टि

यह कहानी कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन' के जैन वीरो की देशभक्ति शीर्षक से रूपान्तरित की गयी है। इसमे साधु की धर्म–निहित दृष्टि का उल्लेख किया गया। विषय–वस्तु पद्मपुराण पर्व ६, श्लोक १–२०, ७८–१६१ २१७–२२१ से ली गयी ज्ञात होती है।

(२६)
दृढ़ सकल्पी भील

कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन' रचना मे 'एक भील का अटल सकल्प शीर्षक से महाभारत की एक भील की कथा दी गयी है। इसमें भील का नाम नही बताया गया है। इसी कथा को 'दृढ सकल्पी भील' के नाम से रूपान्तरित किया गया है। इसमे कुल की निम्नता या उच्चता विचारो या कर्त्तव्य पर निर्भर निर्देशित की गयी है।

(३०)
जैसी बनी बना हो वैसा

यह कहानी 'कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन के विवाह का मूल उ॰ य शीर्षक से रूपान्तरित की गयी है तथा उसे यह शीर्षक दिया गया है। इसमे कन्या की रुचि के अनुकूल वर के साथ उसका सबध किया जाना बताकर ऐसे सबध को प्रशसनीय कहा है। सौन्दर्य और वित्त को देखकर विवाह करना हितकर नही है।

(३१)
निन्यान्नबे का फेर

इस कहानी की विषय वस्तु कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन नामक रचना मे "सन्तोष ही सच्चा धन है" शीर्षक से प्रदर्शित है। इसमे असतोषी की बढती हुई आशाओ को दिखाकर असतोषवृत्ति से उत्पन्न दु ख की झाकी प्रस्तुत की गयी है।

(३२)
बुरी नियत का बुरा नतीजा

कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन रचना मे 'महाराजा रामसिह शीर्षक से इस कथा की विषय वस्तु मे महाराज रामसिह की कुदष्टि का उल्लेख किया गया है। कहानी के माध्यम से राजा की नियत–खराबी का फल फलो मे कीडे पड जाना, शुष्क हो जाना आदि दिखाकर बताया गया है कि सदा नियत ठीक रखना अच्छा होता है। इसकी सभी प्रशसा करते है।

(३३)
उदारता का मधुर फल

इस कहानी की विषयवस्तु कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन रचना मे "उदारता का फल सुमधुर होता है शीर्षक से ली गयी है। इसमे रामपुर के रघुवरदयाल बोहरा

के दो पुत्रो का जीवनवृत्त दिया गया है। बताया गया है कि उदार व्यक्ति अधिक सुखी रहता है।

(३४)

जैसी आवक वैसी जावक

इस शीर्षक की कथा 'कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन' रचना के "अन्याय के धन का दुष्परिणाम" नामक शीर्षक से रूपान्तरित को गयी है। इसमे बिना परिश्रम किये प्राप्त धन का दुष्परिणाम और श्रमपूर्वक उपार्जित धन से आजीविका करनेवाले व्यक्ति की सुखद् वृद्धि का उल्लेख करके बताया गया है। जो पैसा जैसे स्रोत से आता है वह वैसे ही स्रोत से चला जाता है। अपने स्वामी की बुद्धि भी वह अपने अनुकूल बना लेता है।

(३५)

राज्यभोग की लालसा

इस कहानी का प्रयोग ज्ञानसागर–वाङ्मय मे हित–सम्पादक रचना के 'आत्मा का स्वरूप' शीर्षक के अन्तर्गत हुआ है। लेखक ने किसी राजा के जीवन की घटना का उल्लेख किया है। राजा और साधु का नामोल्लेख नही हुआ है। राजकुमार का नाम भी नही है। पद्मपुराण (७७ ५७–७०) मे राजा के पुत्र का नाम प्रीतिकर बताया गया है। वह अक्षनगर के राजा अरिंदम का पुत्र था। राजा अरिदम को अपने मलकीट होने की बात साधु कीर्तिधर से ज्ञात हुई थी। राजा अरिदम ने ही अपने पुत्र प्रीतिकर को मलकीट होने पर उसे मार डालने का आदेश दिया था। शेष कथावस्तु समान है। घटना की समानता से यह कथा रविषेणकृत सस्कृत पद्मपुराण से ली गयी ज्ञात होती है। इस कथा के माध्यम से लेखक द्वारा पुनर्जन्म सिद्ध किया गया है। तथा आत्मा नित्य अजर–अमर निरूपित की गयी है।

(३६)

अविवेकी पिता विवेकी पुत्र

इस कथा की विषय वस्तु ऋृषभचरित रचना के पृष्ठ ६–८ से ली गयी है। महापुराण (५ ८६–११४) मे इस कथा का यथावत् उल्लेख हुआ है। कहानीकार आचार्य श्री ने इसे कथा द्वारा समझाया है कि–

जैसा किया पा रहे है पावेगे जैसा करते है,
सभी जीव अपने अपने दैवानुसार तनु धरते है।।२४।।
आता जाता दीखता न हम सबको चेतन कही कभी,
अनुमान द्वारा उसका सुबोध हो रहता है फिर भी।।२५।।

(३७)

ज्ञान बिना चिन्तामणि पत्थर

यह कहानी मानवधर्म' रचना पृष्ठ १–२ से रूपान्तरित की गयी है। आचार्य श्री ने इस कथा के माध्यम से ज्ञान का ही नाम लक्ष्मी बताया है। यह कथा आचार्य श्री की अलौकिक प्रतिभा का उद्घोष करती है।

(३८)

निज बोध बिना है सिह स्यार

इस कथा की विषय वस्तु के माध्यम से मानवधर्म पृष्ठ ४–५ मे आचार्य ज्ञानसागर मुनिराज ने कहा है कि यह ससारी आत्मा शरीर के साथ तन्मय होकर अनादिकाल से दुनिया मे चक्कर काट रहा है और गीदड सरीखा डरपोक बन रहा है। अत निज–बोध आवश्यक है।

(३९)

छिपे न साचा प्रेम

यह कथा मानवधर्म पृष्ठ २२ से रूपान्तरित की गयी है। इस कहानी के आलोक मे आचार्य ने कहा है कि सज्जन पुरूष का प्राणी मात्र से वैसा ही सहज स्वाभाविक प्रेम होता है जैसा देवरानी का अपने बच्चे से प्रेम कहानी मे बताया गया है। ऐसा स्नेही किसी भी जीव को कभी भी दु खी नही देखना चाहता।

(४०)

अति लोभी को सुख नहीं

यह कथा मानवधर्म भाग २ पृष्ठ १६ से रूपान्तरित की गयी है। आचार्य ने इस कथा से लाभवश अधिक सग्रह, अधिक भारादि का ढोना अशान्ति का मूल कहा है। सन्तोष से ही शान्ति प्राप्त होती है।

(४१)
पिता का पुत्र-स्नेह

इस कथा का उल्लेख ज्ञानसागर–वाड्मय मे 'ऋषभचरित' पृष्ठ ८–६ मे हुआ है। कथा की विषयवस्तु इस शीर्षक से रूपान्तरित की गयी है। आचार्य श्री ने इस कहानी से लोभ का फल दर्शाया है। यह भी स्पष्ट किया है कि पिता मरकर आगामी पर्याय मे भी पुत्रस्नेह करता है। यह स्नेह दो भवो मे भी रहा है। यह कथा मूलत महापुराण (५ ११७–१३७) से ली गयी है।

(४२)
पात्र-दान की महिमा न्यारी

यह कहानी 'ऋृषभचरित' मे प्रतिपादित वज्रजघ और श्रीमती के जीवन चरित से रूपान्तरित की गयी है। महापुराण (६ २६–२६, ५८–६०, ७ ५७–५६ २४६, ८ १६७–१७३, ६ २६–२७, ३३) मे भी आचार्य जिनसेन ने इन दोनो का जीवनवृत्त लिखा है। विषयवस्तु ऋृषभचरित और महापुराण की समान है। इसमे मुनि को आहार देने से इन दोनो का भोगभूमि मे जन्म होना बताया गया है।

(४३)
पाप कटे व्रत किये से

इस कहानी की विषयवस्तु का उल्लेख ऋृभषचरित (अध्याय २ पृष्ठ १६–१६) मे हुआ है। इसमे निर्नामिका द्वारा जिनगुणसम्पत्ति–व्रत की साधना करने तथा उसके माहात्म्य से स्वयप्रभा नामक देवागना के रूप मे जन्म लेना बताया गया है। महापुराण (६ १२६–१३०) मे निर्नामिका का नाम निर्नामा जन्मस्थान पाटण ग्राम और माता का नाम सुरती कहा गया है। पूर्वभव मे इसने मुनि का अपमान किया था फलस्वरूप इस पर्याय मे यह दुखी रही।

(४४)
मृगसेन धीवर-व्रत-फल

यह कथा दयोदय सस्कृत काव्य से रूपान्तरित की गयी है। स्व०श्री प० हीरालाल जी शास्त्री न्यायतीर्थ के द्वारा लिखी गयी दयोदय की प्रस्तावना के अनुसार यह कथा श्री हरिषेणाचार्य–रचित वृहत्कथाकोष के समान है। यशस्तिलक–चम्पू मे भी इसका उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी नेमिदत्त कृत आराधना कथाकोश मे भी यह कथा पायी जाती है। दयोदय के पात्रो के

कुछ नाम परिवर्तित हुए है। सोमदत्त का नाम अन्य रचनाओ मे धनकीर्ति और उसकी पत्नी विषा का नाम श्रीमती कहा गया है। वसन्तसेना वेश्या अनगसैना के नाम से उल्लिखित है। दयोदय मे सोमदत्त के पॉच बार मरण से बचने तथा वेश्या के अकारण पत्र मे परिवर्तन करने का रहस्य उद्धाटित नही हुआ जबकि अन्य ग्रथो मे बताया गया है कि सोमदत्त ने मृगसेन धीवर की पर्याय मे पॉच बार जाल मे फसकर आयी मछली को जीवनदान दिया था। मछली मरकर वेश्या हुई और पूर्वभव के सयोग से वह इस जन्म मे सोमदत्त को बचाने मे सहायक हुई।

यशस्तिलक चम्पू और आराधना कथाकोश मे मछली को पॉच बार जीवन दान दिया जाना बताया गया है। किन्तु दयोदय मे जीवनदान दिये जाने का चार बार का उल्लेख है और चार ही सोमदत्त के मरण की घटनाएँ तथा उनसे उसकी मरण–रक्षा दर्शाई गयी है। कथा मे भी किचित् परिवर्तन किया गया है। अवान्तर कथाओ के माध्यम से प्रस्तुत कथा को पुष्ट किया गया है।

(४५)
पुण्यात्मा धन्यकुमार

इस कथा की विषयवस्तु ज्ञानसागर–वाड्मय मे भाग्यपरीक्षा रचना से ली गयी है। श्री रामचन्द्र मुमुक्षु विरचित पुण्यास्रव कथाकोश मे दानफल शीर्षक के अन्तर्गत अकृतपुण्य (धन्यकुमार) कथा के नाम से इस कथा को लिखा गया है। भाग्यपरीक्षा रचना मे धन्यकुमार के पिता धनसार की आवासभूमि सौराष्ट्र प्रान्त का पैठान नगर बताया गया है जबकि पुण्यास्रवकथाकोश मे उसे अवन्ती देश की उज्जयिनी नगरी का निवासी कहा है। इसी प्रकार भाग्यपरीक्षा मे धन्यकुमार के पिता का नाम धनसार और माता का नाम कमला बताया गया है जबकि पुण्यास्रवकथाकोश मे पिता का नाम धनपाल और माता का नाम प्रभावती लिखा है। यहॉ देवदत्तादि सात भाई कहे गये है और भाग्य–परीक्षा मे चार। धन्यकुमार चौथा भाई था। भाग्यपरीक्षा मे धन्यकुमार के स्वप्नपूर्वक गर्भ मे आने और नहलाने के लिए खोदे गये स्थान मे धन प्राप्ति का उललेख नही हुआ है।

मेढा और चारपाई के धन्यकुमार द्वारा खरीदे जाने का उल्लेख दोनो रचनाओ मे है किन्तु इन वस्तुओ से हुए चमत्कृत लाभ का उल्लेख भाग्यपरीक्षा मे ही हुआ है। पुण्यास्रव कथाकोश मे वसुमित्र सेठ की नौ निधियो की प्राप्ति का भी उल्लेख है जिसकी भाग्य परीक्षा मे चर्चा नहीं की गयी है। इसी प्रकार भाग्यपरीक्षा मे धन्यकुमार द्वारा खरीदी गयी धूली की घटना पुण्यास्रवकथाकोश

मे नहीं दी गयी है। भाग्यपरीक्षा मे भाइयो द्वारा धन्यकुमार का वापी मे गिराये जाने तथा देवो द्वारा उसकी रक्षा किये जाने का प्रसग नहीं है। किसान से सबधित घटना मे कुछ परिवर्तन है।

भाग्य परीक्षा मे नर्मदा मे बहते हुए शव की जाघ मे धन प्राप्ति की घटना पुण्यास्रव कथाकोश मे नही है। इसी प्रकार अधिष्ठात्री देवी गगा द्वारा चितामणि रत्न दिये जाने की घटना भी उसमे नही है। भाग्य परीक्षा मे मुनि से धन्यकुमार के पिता द्वारा उसके अन्य पुत्रो की अपेक्षा अधिक गुणी होने का कारण पूछा गया जबकि पुण्यास्रव कथाकोश मे धन्यकुमार द्वारा यह पूछा जाना बताया गया है कि उसके तीनो भाई उससे रूष्ट क्यो रहते है? भाग्य परीक्षा मे धन्यकुमार के पूर्वभव का नाम अपुण्य बताया गया है और पुण्यास्रवकथा कोश मे अकृतपुण्य। भाग्य परीक्षा मे राजा श्रेणिक द्वारा गुणवती आदि सोलह कन्याओ के साथ धन्यकुमार का विवाह होना तथा आधे राज्य की प्राप्ति का उल्लेख नही है। गुणवती के विवाहे जाने का उल्लेख है किन्तु उसे किसी सेठ की पुत्री बताया गया है श्रेणिक की नही।

इस प्रकार भाग्य परीक्षा मे धन्यकुमार की कुछ घटनाएँ नयी है, उनका अन्यत्र उल्लेख नही है और कुछ घटनाएँ ऐसी भी है जिनका अन्यत्र उल्लेख है किन्तु वे भाग्य परीक्षा मे नही है। सामान्यत विषयस्तु समान है।

(४६)
सत्यघोष की सत्य परीक्षा

यह कथा ज्ञानसागर वाडमय मे समुद्रदत्तचरित रचना की विषयवस्तु से रूपान्तरित की गयी है। ज्ञात होता है इस कथा का मूल स्रोत महापुराण (५६ १४८–१६२) है। कथाकार ने कथा मे सत्य की परीक्षा के लिए रानी रामदत्ता द्वारा शतरज खेल खेला जाना बताया है। जबकि महापुराण मे जुआ खेलना बताया गया है। शेष विषयवस्तु समान है।

इस कथा का उल्लेख भट्टारक प्रभाचन्द्र कृत आराधना कथा–प्रबन्ध ा मे भी हुआ है। इस रचना मे सेठ का नाम सुमित्र और उसके पुत्र का नाम समुद्रदत्त बताया गया है। रत्नो की सख्या पॉच कही गयी है। द्यूत क्रीडा राजा सिहसेन और श्रीभूति के बीच होना लिखी गयी है। 'समुद्रदत्तचरित पुस्तक के नामकरण मे सभवत पूर्व कथित आराधना कथा प्रबन्ध" की इस कथा ने कथाकार को प्रभावित किया है।

(४७)
अद्भुत् शील सुदर्शन का

यह कथा 'सुदर्शनोदय महाकाव्य' की विषय वस्तु से रूपान्तरित की गयी है। इस कथा का स्रोत सभवत ब्रह्मचारी श्रीमन्नेमिदत्त कृत आराधना कथा कोश की "पच नमस्कार मत्र कथा" है। इस कथा मे सेठ सुदर्शन की माता का नाम अर्हद्दासी कहा है। सेठ सुदर्शन का पूर्वभव मे जिनेन्द्र चरणार्विन्द का सेवक गोपाल श्रेष्ठी होना भी बताया गया है। गर्भ मे अवतरित होने पर सेठानी जिनमति द्वारा देखे गये स्वप्न और मुनिराज द्वारा बताये गये स्वप्नफलो का उल्लेख ब्र० नेमीदत्त ने नही किया है। देवदत्ता वेश्या द्वारा की गयी काम कुचेष्टाओ का भी उल्लेख नही है। शेष विषयवस्तु समान है।

(४८)
नारि-सग मे सुख नहीं

यह प्रसग ज्ञानसागर वाड्मय के जयोदय महाकाव्य मे उपलब्ध है। महापुराण (४३ ३२६–३२९ ४४ ७१–७२ ३४४–३४६ ४५ ११–१५२) मे यह प्रसग विस्तार से समझाया गया है। ज्ञानसागर आचार्य श्री के जयोदय महाकाव्य का स्रोत सभवत महापुराण रहा है।

रचना-नाम

प्रस्तुत रचना का नाम ज्ञान और कथाकुञ्ज इन दो शब्दो के योग से निर्मित है। इनमे ज्ञान शब्द एक ओर जहाँ बोध का प्रतीक है, दूसरी ओर वह महाकवि आचार्य श्री विद्यासागर के गुरु स्वर्गीय महाकवि श्री आचार्य ज्ञानसागर महाराज के नाम का बोधक भी है। मूलत उन्ही के नाम को आदि मे रखकर रचना का नामकरण किया गया है।

रचना-महाहात्म्य

इस रचना की कहानियाँ केवल मनोरञ्जनार्थ नही लिखी गयी है। इन्हे पढने से पाठको को सद्ज्ञान उत्पन्न होगा। उनकी सद् विषयो की ओर प्रवृत्ति होगी। ज्ञान बढेगा। जीवन मूल्यो को जानने। समझने और शाश्वत् सुख पाने की प्रेरणा प्राप्त होगी। आचार–विचार मे निर्मलता का सचार होगा। इनसे न केवल इह लौकिक अपितु पारलौकित सुख की प्राप्ति भी सभव है।

रचना-वैशिष्ट्य

इस रचना की विशेषता है कहानियो की विषयवस्तु एव रचनाशैली। विषयवस्तु का आचार्य विद्यासागर के गुरु स्वर्गीय आचार्य ज्ञानसागर महाराज के सम्पूर्ण वाङ्मय से चयन किया जाना इस रचना की प्रथम विशेषता है।

दूसरी विशेषता है कहानियो के शीर्षक। वे विषयवस्तु के अनुरूप रखे गये है। पाठको को शीर्षक से कहानी की विषयवस्तु को समझने मे कठिनाई नही होगी।

तीसरी विशेषता है – कहानियो की भाषा सरल और बोधगम्य है।

रचना-प्रेरक.

रचना के मूल मे कोई प्रेरणा अवश्य गर्भित होती है। बिना प्रेरणा के रचना का जन्म नही होता। प्रस्तुत रचना के प्रेरक है आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के मेधावी शिषय मुनि श्री सुधासागर जी महाराज। वे यथा नाम तथा गुण कहावत को चरितार्थ करते हैं।

जयोदय–महाकाव्य सगोष्ठी के पूर्व महाकवि आचार्य ज्ञानसागर वाङ्मय मे प्रतिपादित कथाओ का तुलनात्मक एव समीक्षात्मक अध्ययन करने के लिए मुनि श्री सुधासागर महाराज के सकेतानुसार पत्र भिजवाया गया था। पत्र से प्रेरणा पाकर आचार्य ज्ञानसागर वाङमय का अध्ययन किया गया और कथात्मक विषयवस्तु के चयन की ओर ध्यान दिया गया। चयन की गयी कथा–विषयवस्तु को विभिन्न शीर्षको मे विभाजित करने के पश्चात् उसे कहानीके स्वरूप मे रूपान्तरित किया तैयार की गयी सम्पूर्ण सामग्री मदनगज–किशनगढ मे आयोजित जयोदय–महाकाव्य–सगोष्ठी के समय अवलोकनार्थ मुनि श्री सुधासागर जी के कर–कमलो मे समर्पित की। विश्राम–काल मे उन्होने उक्त सामग्री को आद्योपान्त पढा और प्रसन्नता व्यक्त करते हुए शुभाशीर्वाद दिया। मै रचना–प्रेरक मेधावी सन्त श्री १०८ सुधासागर महाराज के चरण कमलो मे विनम्र विनयाजलि एव नमोऽस्तु समर्पित करता हूँ, जिनकी सद्प्रेरणा से इस विद्या मे लेखनी प्रवर्तित हुई।

उस समिति का भी आभारी हूँ जिसने आचार्य ज्ञानसागर–वाङ्मय को न केवल प्रकाशित किया अपितु उसे स्वाध्यायार्थ विद्वानो तथा पहुँचाया। समिति के इस पुनीत कार्य का ही फल है प्रस्तुत रचना।

मै श्री दिगम्बर जैन साहित्य–सस्कृति–सरक्षण–समिति के सरक्षक भाई श्री शिखरचन्द्र जैन डी–३०२ विवेक विहार, दिल्ली का विशेष रूप से

अनुगृहीत हूँ, जिनके उदार सहयोग से प्रस्तुत रचना का प्रकाशन हो सका है।

डॉ० रमेशचन्द्र जैन विजनौर के प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता हूँ जिन्होने इस कार्य के लिए न केवल अवसर प्रदान किया अपितु सहायक–सामग्री प्राप्त कराने मे सहयोग भी किया।

आदरणीय डॉ० दरबारीलाल जी 'कोठिया' तथा डॉ० भागचन्द्र जैन 'भास्कर के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिनके उदार प्रोत्साहन से मैं यहा तक पहुच सका हूँ।

अन्त मे धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पलता जैन और आत्मज पकज साहित्याचार्य एम०सी०ए० के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होने स्वय कठिनाइयो मे रहकर मुझे लेखन–कार्य मे सराहनीय सहयोग किया है। रचना की अशुद्धियॉं लेखक को भेजने के लिए विज्ञ पाठक सादर निवेदित हैं।

कस्तूरचन्द्र 'सुमन

श्री महावीरजी (राज)
जिला सवाईमाधोपुर
दिनाक २१/७/६६ ईसवी

श्री दिगम्बर जैन साहित्य-संस्कृति-संरक्षण समिति

ग्रन्थ-प्रकाशन-सूची

क्रमाक	ग्रन्थ का नाम	लेखक	मूल्य
१	कुन्द–कुन्द–शब्दकोश	डॉ० उदयचद जैन उदयपुर	५ ००
२	प्रवचनसार एक अध्ययन (डॉ ए एन उपाध्ये कृत प्रवचनसार अग्रेजी प्रस्तावना का हिन्दी रूपान्तरण)	प्रो० एल० सी जैन (जबलपुर)	१२ ००
३	जैनिज्म एण्ड महावीर (अग्रेजी मे)	डॉ० भागचन्द्र जैन भास्कर नागपूर	३० ००
४	जैन धर्म सक्षेप मे (प्रो० ए० चक्रवर्ती द्वारा लिखित पचास्तिकाय की अग्रेजी प्रस्तावना का हिन्दी रूपान्तरण)	प्रो० एल सी जैन जबलपुर श्री नेरश जैन गोटेगाव	२५ ००
५	समयसार का दार्शनिक चिन्तन (प्रो० ए० चक्रवर्ती द्वारा लिखित समयसार की अग्रेजी प्रस्तावना का हिन्दी रूपान्तरण	डॉ० भागचन्द्र जैन 'भास्कर नागपूर	३५ ००

अनुक्रमणिका

"रानी का अविवेक"

ससार विचित्र है। क्या माता और क्या पिता, सभी काम–वश अविवेकी देखे जाते हैं। बुहत पुराने समय की बात है। विद्याधर जहाँ रहते थे, वहाँ विद्याधारो का राजा कालसवर सुख पूर्वक राज्य करता था। उसकी रानी बहुत सुन्दर और भली थी। अपने पति कालसवर को बहुत प्रिय थी किन्तु निस्सन्तान रहने से सब कुछ होने पर भी उसमे वह अपनी शान नहीं समझती थी।

एक दिन पति–पत्नी दोनो आकाशमार्ग से जा रहे थे। एकाएक उनके विमान की गति रूक गई। विमान की गति भग होने का कारण जानने के लिए जैसे ही कालसवर ने आगे देखा कि उसे एक शिला हिलती हुई दिखाई दी।

कालसवर आश्चर्य मे पड गया। उत्सुकता के साथ वह शिला के निकट गया। उसने शिला को उठाया। शिला हटाने पर उसे सौम्य बालक दिखाई दिया। उसे देखकर वह ऐसा प्रसन्न हुआ मानो उसे चिर काछित निधि मिल गई हो। सूर्य–रशिमयो से जैसे कमल खिल जाता है, ऐसे ही उसकी हृदय–कालिका खिल गई।

अतीव प्रसन्नता के साथ अब वह अपनी प्रिया के पास गया और कहने लगा–प्रिये! सुतलाभान्तराय अब नहीं रहा। हमारा भाग्योदय हुआ है। तुम्हे प्रसववेदना नहीं सहना पडी। हर्ष है उस वेदना के बिना ही सुन्दर बालक आज हमारे भाग्योदय से हमे प्राप्त हुआ है।

कालसवर की पत्नी को प्रतीति नही हुई। वह कहने लगी–नाथ! उपहास क्यो करते हो? कटे पर नमक क्यो छिडक रहे हो? मै तो दुर्भागिनी हूँ। मेरे भाग्य मे पुत्र लाभ नही।

कालसवर ने कहा–प्रिये। दुर्दैव तो आज डरकर भाग गया है। शीघ्र आओ और पुत्र को उठाओ। रानी ने कहा–प्रीतम! अपने पुत्र के समान यह पुत्र कैसे प्रीतिकर हो सकता है? आपकी इतर रानियो के पॉच सौ पुत्र है। वे गुणो मे एक से एक बढकर है। कालसवर को रानी के हृदय को समझने मे देर न लगी। वह प्रेम पूर्वक रानी से बोला प्रिये! मुझे अपने पाँच सौ पुत्रो का अभिमान नहीं है। मै युवराज पद से इसे ही सुशोभित करूँगा। रानी प्रसन्न हुई। उसने उस बालक को सहर्ष गोद मे उठा लिया।

अपने नगर पहुँच कर राजा कालसवर ने जनता के बीच कहा–रानी गर्भवती थी। गर्भ–गूढता से उसके गर्भवती होने का अनुमान नही लगाया जा सका। उस सती ने राह मे पुत्र जन्मा है। सभी हर्षित हुए और सभी ने बालक के चिरायु होने की कामना की।

बालक का नाम 'प्रद्युम्न' रखा गया। बालक पर "होनहार विरवान के होत चीकने पात" कहावत चरितार्थ हुई। अपने कौमार्यपन मे ही यह अपने धर्मपिता कालसवर के प्रवल शत्रु को बॉध लाया था। कालसवर ने इससे प्रसन्न होकर इसके भाल पर युवराज पट्ट बॉधा था।

यह सब देखकर राजा की अन्य रानियो और पुत्रो के मुख म्लान हो गये। अब प्रद्युम्न पर गुप्त वार होने लगे। समय ने करवट बदली। बालक प्रद्युम्न का सौन्दर्य उसे ही घातक बन गया।

जिस रानी ने इसका पालन–पोषण कर बडा किया उसी के मन मे विकार पैदा हुआ। एक दिन कुमार प्रद्युम्न अपनी धर्ममाता का आशीर्वाद लेने गया। रानी कहने लगी–तुम पुत्र नहीं, आज से तुम मेरे रति के दूत हो।

प्रद्युम्न अपनी धर्ममाता उस रानी से ऐसा सुनकर सोच मे पड गया। वह विचारता है– माता के वात का प्रकोप है। इसी कारण यह अट–सट बक रही है। उसने कहा– मातेश्वरी जिनराज साक्षी है। मै तेरा पुत्र हूँ।

रानी ने एक न सुनी। उसने कहा–प्रद्युम्न! तुम पुत्र नही। नर अवश्य हो। पुरानी बातो को छोडो। "रात को आया करो" यह कहने मे भी उसे कोई सकोच नही हुआ। प्रद्युम्न ने कहा– मै पुत्र हूँ, पुत्र ही रहूँगा। तुम्हारी दुष्कामना पूर्ण नही होगी भले ही पूर्व से उदित होने वाला सूर्य पश्चित से उदित क्यो न होने लगे? प्रद्युम्न अपने विचारो मे पर्वत के समान निश्चल रहा। नागिन के समान रानी काम–विकार वश फुफकारती रही और प्रद्युम्न गरुड के समान जहर उतारता रहा।

सफलता हाथ न लगने पर रानी विचार करने लगी कि यह अच्छा नही हुआ। न घर की रही, न घाट की। उसने इसे मार डालने का विचार किया। अपने शरीर का विकृत रूप बनाकर राजा कालसवर से उसने कहा– राजन्! जिस बालक को आप इतने आदर से लाये, उसी ने मेरी यह दुर्दशा की। राजा को रोष आया। कुमार और राजा के बीच युद्ध हुआ। सत्य की विजय हुई। कुमार से सभी सामन्त, शूर पराजित हुए। देखो काम वश सुभगा–रानी ने अपना विवेक खो दिया। ससार की यही दशा है।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० १७–२४ पद्य ३०–६५]

कौटुम्बिक जीवन की झाँकी

एक समय की बात है। एक नगर मे नगर के बाहर एक झोपडी मे एक श्रमिक (मजदूर) रहता था। उसके कुटुम्ब मे वह और उसकी पत्नी दो ही प्राणी थे। श्रमिक दिनभर परिश्रम करता और जो मजदूरी मिलती उससे दोनो का जीवन–यापन होता था। फिर भी पति–पत्नी दोनो प्रसन्न थे।

एक दिन श्रमिक चावल खरीदकर घर लाया। बहुत दिन बाद उसके घर चावल आये थे। बहुत हर्ष के साथ उसकी स्त्री ने चावल पकाये। चावलो के पक जाने के पश्चात् स्त्री ने श्रमिक से कहा– बडे भाग्य से आज चावल खाने को मिले है। प्रीतम! बिना मीठे के चावल खाने मे आनन्द नहीं। मीठा और लाओ।

श्रमिक मीठा (गुड) लेने बाजार गया। पास मे पैसे न रहने से उसे मीठा कौन दे। वह असमञ्जस मे था। उसे समझ नही आ रहा था कि वह अब क्या करे। इसी सोच–विचार मे वह आगे बढा। उसे एक व्यापारी ऐसा दिखाई दिया जो अपनी दूकान लगा रहा था। वह गुड की एक भेली बाहर रखकर दूसरी भेली लाने घर के भीतर गया।

इसी अन्तराल मे श्रमिक ने आगे–पीछे का कोई विचार नही किया और वह बाहर रखी गुड की भेली उठाकर चुपचाप भागा। इतने मे वह व्यापारी भी घर के भीतर से दूसरी भेली लेकर बाहर आया और उसने इसे भेली ले जाते हुए देखा। उसने इसका पीछा किया और इसे पकड लिया।

श्रमिक की पत्नी झोपडी के बाहर आई। वह श्रमिक से कहने लगी– मुझे दु ख है कि तुम गुड चुराकर लाये। मेरे घर की बदनामी करते हुए तुम्हे लाज नही आई। सब भजन बेकार गया। हे भगवान्! यह कैसा सकट आया है। कहने लगी– जाओ और अपनी करनी का फल पाओ।

उसे लातो घूसो से बहुत पीटा गया। हतकडियॉ डालकर कोतवाली लाया गया। श्रमिक अपनी करनी पर पश्चाताप करने लगा कि उसने ऐसा क्यो किया जो कि इतनी मार खाना पडी। वह सोचता है–यदि छूट गया तो अब ऐसा हे भगवान्! कभी नही करूँगा।

अनुनय–विनय करने पर उसे छोड दिया गया। रात्रिभोजन के समय

वह घर लौटा। भात का इसका हिस्सा रखा गया था जिसे विलाव खा गया। इस बेचारे को भूखे ही रात काटनी पड़ी। यह है कौटुम्बिक जीवन की झाँकी। कुटुम्ब मे फॅसकर यह ससारी इसी प्रकार दु खी होता है। कीचड मे पैर डालकर धोने की अपेक्षा पैर नही डालना ही श्रेयस्कर है।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० २५–२६ पद्य ३–१०]

卐

सुख की आशा करते–करते युग–युग अब तक बीत गये।
भव–भव, भव–दुख सहते–सहते भव–दुख से अति भीत हुए।।
मन वाछित फल मिले तुमहे बस यही भावना भाकर मै।
दुख का हारक सुख का कारक तथ्य कहू जिन चाकर मै।।

इस का सेवन करते आता यदि कुछ–कुछ कटु स्वाद मनो।
किन्तु अन्त मे मधुर–मधुरतम मुख बनता निर्बाध बनो।।
स्वल्प मात्र भी इसीलिए मत इससे मन मे भय लाना।
रोग मिटाने रोगी चखता जिस विधि कटु औषध नाना।

करूणा रस पूरित उर वाले जग हित मे नित निरत रहे।
दुर्लभ जग मे सुलभ उदय जन वाचाली बस फिरत रहे।।
ढुलमुल–ढुलमुल नभ मे डोले बिन जल बादल बहुत बके।
सजल जलद है जल वर्षाते कम मिलते मन मुदित भले।।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "गुणोदय से)

भाई-भाई का वैर-स्नेह
कमठ और मरुभूति

यह दो भाइयो की कहानी है। बात आज की नहीं, बहुत पुरानी है। भरतक्षेत्र के सुरम्य देश मे पोदनपुर नामक एक नगर था। यहाँ विश्वभूति नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके परिवार मे तीन लोग थे। उसकी पत्नी अनुन्धरी और उसके दोनो बेटे कमठ और मरुभूति। ये दोनो बेटे विवाहित थे। कमठ की स्त्री का नाम वरुणा और मरुभूति की स्त्री का नाम वसुन्धरी था।

विष और अमृत दोनो का उत्पत्ति–स्थल जैसे एक ही समुद्र था, ऐसे ही इन दोनो की जननी एक थी। कमठ विष रुप था। मन्त्री का पुत्र होने से उसके उपद्रवो को जनता मन मसोस कर सह लेती थी। मरुभूति अमृत के समान हितैषी था। सबकी कुशलता पूछता और सभी को आनन्दित करता था। वह मृदुभाषी, सरल–स्वभावी, मिलनसार और परसेवाभावी, परोपकारी एव गभीर था।

पिता, कमठ को हमेशा समझाता–बेटा! गुणी बनो। बिना गुण (धागा) के मुक्ताफलो का भी आदर नहीं। उन्हे कोई गले नही लगाता। इस पर मृदुमति पिताजी को कहता–पिताजी! भाई साहब से ऐसा मत कहो। वे मुझसे अच्छे है जैसे देवदार वृक्षो की अपेक्षा चन्दन के वृक्ष अच्छे होते है। कमठ को पिता की शिक्षा रुचिकर नही लगती थी। वह सोचता कि न मरुभूति होता, न पिता ऐसा कहते।

पिता के मरने पर राजा ने मृदुमति को मत्री बनाया। मृदुमति ने कमठ को मत्री पद देने का निवेदन किया किन्तु लोगो ने स्वीकार नही किया। कमठ को यह बात अच्छी नही लगी।

एक दिन मत्री मरुभूति कही अन्यत्र गया था। उसकी पत्नी अनुन्धरी को देखकर कमठ उसपर असक्त हुआ। उसने अपना मतव्य अपने मित्र कलहसक के आगे प्रकट किया। मित्र ने कहा–कमठ! अनुन्धरी तुम्हारे छोटे भाई की पत्नी होने से तुम्हारे लिए पुत्री के समान है। महापापी ही ऐसा सोचता है। मित्र के उपदेश का कमठ रूपी चिकने घडे पर कोई प्रभाव न पडा। उसके आदेश से विवश होकर वह अनुन्धरी के पास गया और कहने लगा। अनुन्धरी! कमठ का एकाएक स्वास्थ्य खराब हो गया है।

सन्देश पाते ही घबराकर अनुन्धरी कमठ के पास आई। उसे क्या पता था कि उसे छला जा रहा है। वह कमठ के जाल से बच निकल कर भागने के लिए मछली के समान बहुत तडफडाई किन्तु उस बेचारी की एक न चली। बलपूर्वक कमठ द्वारा उसका शील भग कर दिया गया।

कलहसक ने यह घटना किसी राजपुरूष को बता दी। धीरे–धीरे यह बात राजा के कान तक भी पहुँच गई। इसी बीच मत्री मरुभूति भी ग्रामान्तर से लौट आया। घटना सुनकर उसे पहले तो बहुत दु ख हुआ किन्तु अपना बडा भाई जानकर वह अपने इस अपमान को पी गया। उसने सतोष से अपने को समझा लिया। राजा से उसने कहा–राजन् ! लोगो ने तूल का तमाल बना दिया है। मूल मे कुछ नही है।

इस प्रकार मरुभूति के बहुत कुछ कहने पर भी राजा को विश्वास नही हुआ। राजा ने सोचा–कोई भी अपने घर की बुराई को स्वय कैसे प्रकट कर सकता है। अपराधी को दण्ड देना राजा का कर्त्तव्य है। राजा ने कमठ का काला मुँह करके देश से निकाल दिया।

कमठ ने तापसी वेष धारण कर रत्नगिरी पर रहना आरभ किया। उसके मन मे अब मरुभूति खटकने लगा। अपने सभी कष्टो का कारण उसने मरुभूति को ही जाना। उसने मरुभूति को मार डालने का निश्चय कर लिया।

इधर मरुभूति की सज्जनता देखो। भाई के दण्डित होने से उसे भाई द्वारा किये गये अपमान से भी अधिक दु ख हुआ। पता लगने पर उसने भाई से मिलने की राजा से अनुमति चाही। राजा ने कमठ के कपट पूर्ण व्यवहार से मरुभूति का उसके पास जाना उचित नही समझा। उसने मरुभूति को बहुत समझाया किन्तु भ्रातृ–स्नेह के आगे राजा की न चली और वह मिलने चला गया।

मरुभूति ने जाकर कमठ के आगे अपना शीश झुकाया, विनत भाव से प्रणाम किया और घर लौट चलने को भी कहा किन्तु कमठ पर मरुभूति की इस सौजन्यता और भ्रातृ–स्नेह का कोई प्रभाव नही पडा। वैर वश कमठ ने इतने जोर से पत्थर मारा कि मरुभूति का प्राणान्त हो गया।

परिवार मे कौन किसका है? स्वार्थ के आगे नैतिकता, सौजन्यता घुटने टेक देती है। वैर के आगे स्नेह नही रह पाता। भाई भाई का दुश्मन है। स्वार्थ–पूर्ति के निमित्त भाई के मान–सम्मान की ओर भी ध्यान नही दिया जाता। ऐसा स्वार्थ त्याज्य है।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० २८–३५ पद्य १८–५१]

सगी बहिन भी स्वार्थमय

किसी नगर मे एक धनवान सेठ रहता था। वह ईमानदार, दयालु और धार्मिक पुरूष था। उसके परिवार मे चार सदस्य थे–वह, उसकी पत्नी, और उसकी दो सन्तान। इनमे एक पुत्र और एक पुत्री थी। परिवार छोटा होने से चारो सानन्द रहते थे।

सेठ ने अपने बेटे का विवाह भी किया था तो उसमे पैसा होते हुए भी व्यर्थ खर्च नही किया था। नगर मे जिस प्रकार विवाह होते आ रहे थे वैसे ही उसने भी सादगी से कर लिया था। बेटी का विवाह अवश्य धूम–धाम से करना चाहता था।

उसने बेटी के लिए देखने मे सुन्दर और गौर वर्ण का वर खोजा और बडे उत्साह के साथ उसका विवाह किया। दहेज देने मे कोई कृपणता नही की। अपनी तिजोरी खोल दी। उसने जो बन सका सब कुछ दिया। बेटी–दामाद सुखपूर्वक रहने लगे। बेटी का परिवार बढने लगा। उसके अनेक बेटे बेटियॉ हुईं।

बच्चो के बडे होने पर एक बच्चे का विवाह हुआ। सेठ और उसका बेटा दोनो बहुत प्रसन्न थे। मामा होने के नाते भात ले जाने मे उसने उदारता से काम लिया। कीमती वस्त्र और कुछ स्वर्णाभूषण भी बहिन के घर ले गया। बहिन ने उसका अच्छा सत्कार किया।

समय ने करवट बदली। सेठ का कारोबार गिरने लगा। अब वह आमद नही रही जो पहले थी। कहा जाता है–चरित नारि का, भाग्य पुरूष का। देव न जाने फिर क्या मानव? पुरूष के भाग्य को देव भी नही समझ पाते है। भाग्य के आगे पुरूषार्थ की नही चलती। वह शक्तिहीन दिखाई देता है।

एक दिन सेठ के घर मे आग लग गई। सब जल गया। निर्धन हो गया बेचारा। सेठ का पुत्र बडे सोच मे पड गया। वृद्धत्व के कारण उसके माता–पिता द्रव्यार्जन मे हाथ नही बटा पाते थे।

असहाय होकर सेठ–पुत्र ने विचार किया– बहिन का सहारा लेना चाहिए। वह बहिन के नगर की ओर चल पडा। भूखा–प्यासा जिस किसी प्रकार बहिन के घर पहुँचा। द्वार खटखटाया। बहिन ने द्वार खोले किन्तु हाल–बेहाल

देखकर उसने इसे पहिचाना नही। कहने लगी–मै तुम्हे नही जानती। आप धर्मशाला चले जाइए। बच्चे बहार आये। वे देखते ही पहिचान गये। वे अरे मामा! कह ही पाये थे कि बहिन ने आख दिखाकर उन्हे चुप कर दिया।

भाई इस अपमान को न सह सका। उल्टे पैर लौट आया। अपनी भूल पर पछताता रहा बेचारा। उसे क्या पता था कि जब दिन खराब आते है तो भीख भी मागे नही मिलती किन्तु यह भी सच है कि किसी का भी एक समान समय नही जाता। कहते है घूरे (कचरा घर) के दिन भी फिरते है फिर तो मनुष्य का क्या सोचना। जिसका उदय है उसका नियम से अस्त भी है, और जिसका अस्त है उसका उदय भी है। वह बहिन के घर से निराश लौटकर आगे बढा। उसे एक साधु के दर्शन हुए। वह बहुत हर्षित हुआ। उसे आभास हुआ कि अब उसके भाग्योदय मे देर नही है। अब नीके दिन आनेवाले है।

मुनिश्री के चरणार्विन्दो मे बार–बार नमन करके तथा चरण–रज ले कर वह कुछ ही दूर आगे चल पाया था कि उसे किसी ने बताया कि जो श्रीपुर नगर के राजपुत्र के सर्प–विष को दूर कर देगा, उसे मुँह मागी माया प्राप्त होगी।

सेठ का पुत्र यह सुनकर हर्षित हुआ और तुरन्त वह श्रीपुर की ओर चल पडा। वहाँ पहुँचकर उसने देखा सपेरे राजपुत्र को घेरे हुए है। कोई भी विष दूर करने मे सफल नही हो रहा है। सेठ के पुत्र ने पच नमस्कार मत्र का उच्चारण करके मुनि चरण–रज जैसे ही लगाई कि राजपुत्र की विष–वेदना दूर हो गई और वह सोते हुए के समान उठ गया।

धर्मकी अचिन्त्य महिमा है। सेठ के पुत्र की गरीबी दूर होते देर न लगी। राजपुत्र की विष–वेदना दूर होने से राजा ने उसे अतुल सम्पत्ति दी। वह भी सम्पत्ति लेकर घर की ओर चल पडा।

घर लौटते समय फिर बहिन का गाव उसे मिला। उसे बहिन का पूर्व व्यवहार याद आया। वह बहिन के घर न जाकर धर्मशाला मे रुक गया और विश्राम करने लगा।

बहिन को उसके आने की जैसे ही सूचना प्राप्त हुई कि धर्मशाला दौडी आई और प्रेम प्रकट करते हुए कहने लगी–भैया! तुम यहा क्यो रुके, घर क्यो नही आये? लोग सुनेगे कि मेरा भाई आया था और वह धर्मशाला मे रुका था तो वे क्या कहेगे। मै तो उन्हे मुँह भी न दिखा पाऊँगी। अत हमारे साथ चलो, उठो। मै तुम्हे धर्मशाला मे नही रहने दूँगी।

स्वार्थ के ये है प्रत्यक्ष रूप। बहिन वही है जो निर्धन देखकर कहती

थी कि पहचानती नहीं हूँ। भूल गई थी भाई को। सम्पत्ति साथ देखकर वही बहिन अब भाई को दूर से ही पहिचान लेती है। गरीबी मे इसी बहन को धर्मशाला मे भाई को ठहरने की सलाह देने मे लाज नहीं आयी थी और आज लाज के मारे मरी जा रही है।

परिजनो की प्रीति के मूल मे स्वार्थ छिपा है। प्रत्येक व्यवहार मे स्वार्थ समाया है। परिवार स्वार्थ पूर्ण है। आचार्य ज्ञानसागर ने ठीक ही कहा है--

कुण्डली

देखा भाई--बहिन का, कैसा है व्यवहार।
हन्त हन्त ससार मे स्वार्थ पूर्ण परिवार।।
स्वार्थ पूर्ण परिवार करे मतलब की यारी।
अगर न मतलब सधे, वहॉ देता है गारी।।
यह ही है सुन हे समर्थ जगजन का लेखा।
तुमने सोचा नही, सिर्फ आँखो से देखा।।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ३५--३८ पद्य ५२--६५]

卐

लोहा बने कनक पारस सग पाके,
मै शुद्ध किन्तु तमसा तुम सग पाके।
वो तो रहा जड, तुम चेतना हो,
कैसा तुम्हे जड, तुला पर तोलना हो?।।१२।।

सानन्द भव्य तुम मे तवलीन होता,
पाता स्वधाम सुख का गुणधाम होता।
औ देह त्याग कर आत्मिक वीर्य पाता,
ससार मे फिर कभी नहि लौट आता।।१३।।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "निरञ्जन शतक से)

लक्ष्मी सर्वत्र पूज्यते
(लक्ष्मी की सर्वत्र पूजा होती है)

यह सब जानते है कि ससार एक सराय है। एक आता है, दूसरा जाता है और यह क्रम सदा लगा ही रहता है। यह सब जानते हुए भी जगत धन का ही इच्छुक बना हुआ है। धन के लिए ही मूलत वह माता–पिता की सेवा करता है। धनहीन वृद्ध जन बहुत कष्ट उठाते है। पुत्र भी उनका साथ नही देते।

एक समय की बात है। किसी नगर मे एक बहुत धनवाला पुरुष अपने परिवार के साथ रहता था। वह रात–दिन अर्थोपार्जन मे लगा रहता था। एक घडी भी चैन नही लेता था। इसके एक नहीं, सात बेटे थे और सभी के उसने धनवानो के घर विवाह किये थे।

बहुओ के आने से घर मे तनाव पैदा हुआ। घर मे महिलाओ के पारस्परिक व्यवहार मधुर नही रहे। लाचार होकर सभी भाई अलग–अलग हो गये। सारी सम्पत्ति के बराबर–बराबर हिस्से किये गये और प्रत्येक लडके को उसका हिस्सा दे दिया गया।

अब माता–पिता की सेवा बला सी प्रतीत होने लगी। सेवा से सभी कतराने लगे। नाती, पोते हँसी करने लगे। कोई बाबा की कॉछ खोलता तो कोई पगडी उछाल देता। कोई उनकी चलने मे सहायक लाठी छिपा देता। कभी गुस्से मे आकर यदि किसी के पुत्र को मार देता तो उसकी मॉ कहने लगती काम करने को शक्ति नही बच्चो के मारने को शक्ति है।

कतरा कर वृद्ध पिता के विश्राम के लिए एक कोने मे चारपाई और उस पर मलिन चादर बिछा दी गयी। खटमल होने से उस बूढे को नीद नही आती, रातभर जागरण करता था। जब परिवार के सभी सदस्य भोजन कर चुकते तब कही इस वृद्ध पुरुष का नम्बर आता। भोजन मे भी कभी दाल नही रहती तो कभी सब्जी।

बेचारा वृद्ध इतना दु खी हुआ कि उसे इस जीवन से मर जाना अच्छा लगने लगा। वह बहुत पछताया अपनी करनी पर। उसे अब आभाष हुआ कि यदि धन नही दिया होता तो मेरी यह स्थिति न होती। अब क्या हो सकता है। मैने पहले विचार क्यो नही किया?

वह विचारो में निमग्न था। कोई उसका मित्र उसके पास आया। उसने उसे उदास देखा। उदासी का कारण पूछने पर उस वृद्ध ने सारा वृत्त आदि से अन्त तक कह सुनाया। वृद्ध की आप बीती सुनकर मित्र सोच मे पड़ गया। एकएक उसे एक उपाय नजर आया। उसने वृद्ध से कहा मैं तुम्हारे कष्टो का उपाय करके अभी आता हूँ और यह कहकर वह घर चला गया।

उसने घर जाकर ताम्र धातु के सुन्दर गहने बनवाये और गहनो पर सोने का पानी चढवाया। उन गहनो को पेटी मे बन्द कर और पेटी लेकर वहाँ आया जहाँ वह वृद्ध बैठा था। उसने आकर कहा– मित्र सेठ जी! अपनी गुप्त सम्पत्ति सम्हाल लीजिए। मेरे पास जो अब तक रही उसे देकर मै निश्चिन्त हुआ। वह सूचीबार एक–एक गहना निकाल–निकाल कर उस वृद्ध को दिखाने लगा। वृद्ध पुरुष के एक –एक कर सातो बेटे और उनकी बहुएँ भी वहाँ आ गयीं।

उस वृद्ध के पास गहने देखकर बेटे सोचने लगे–पिताजी के पास अब भी बहुत पूजी है। पिताजी तो लक्ष्मी के घर है। हमने तो इन्हे निर्धन समझा था। सभी पछताने लगे। बहुओ ने अपने–अपने पति से कहा– बडो की सेवा से मेवा मिलता है। यदि हमने पिताजी की सेवा की और खुश होकर उन्होने एक गहना भी दे दिया तो हमारा जीवन सफल हो जावेगा।

फिर क्या था। सभी बटे और बहुएँ पिता की सेवा मे रहने लगे। कोई नहलाता, कोई पैर दबाता तो कोई कपडे धोकर लाता, खाट बिछाता। कोई कहता हलवा खा लीजिए तो कोई कहता पूडी–पकौडी खाने को। अब तो जो इच्छा करता उसकी पूर्ति होने लगी।

वृद्ध विचारता है कि ससार लक्ष्मी का दास है। सर्वत्र लक्ष्मी का ही आदर है। यदि ये गहने पास न होते तो बिना मौत मरता। मित्र को दुहाई है, जिसकी कृपा से मेरे दु ख दूर हुए। लक्ष्मी तेरी जय हो।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ४०–४४ पद्य ८–३२]

卐

पेट भरने की चिन्ता करो पेटी भरने की नही, पेट तो न्याय नीति से भरा जायेगा। लेकिन! पेटी नियम से अन्याय–अनीति से भरी जाएगी।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज के प्रवचनो से)

कुलटा-नेही यशोधर

नारियाँ दो प्रकार की होती है– सती और असती। इनमे असती नारियाँ अपने पति मे सतुष्ट नहीं रहती। वे इतर पुरुषो मे आसक्त रहती है। उन्हे अपने स्वार्थ की पूर्ति मे पति को मार डालने मे भी कोई सकोच नहीं होता। राजा यशोधर एक ऐसी ही नारी से ठगे गये थे।

बहुत पुरानी बात है। इस पृथिवी पर एक यशस्वी राजा हुए है, जिसका नाम यशोधर था। वे निरोग शरीर सुभग और सुलक्षणो से युक्त थे। उनकी रानी भी चन्द्रमुखी थी। उसकी रूप राशि पर राजा आसक्त था। राजा के प्रति किन्तु वह उदासीन थी। वह राजा की अपेक्षा राजा के महावत को अधिक चाहती थी।

एक दिन राजा को नीद नही आई और थकान के कारण वह निश्चल हो गया। उसने बोलना भी बन्द कर दिया। रानी उसे सोता हुआ जानकर शैया से एकाएक उठी और जहाँ उसे रात मे जाना था, चली गयी। राजा ने उसकी यह क्रिया देख उसका पीछा किया। उसने अद्भुत दृश्य देखा और विचार किया कि काम की विडम्बना देखो। मखमली सेज स्वर्ण महल, राजा का सहवास भी कामवश प्रीतिकर नही। कामी की रुझान बडी विचित्र है। राजा ने स्वय को समझाया कि शूकरी को हलवा उतना रूचिकर नही होता जैसी पुरीष। अत खेद करना व्यर्थ है।

इस प्रकार मन को सन्तुष्ट कर राजा लौट आया और चुपचाप शैया पर लेट गया। कुछ समय पश्चात् जब रानी लौटकर आई तब राजा ने पूछा– इतनी रात कहाँ गयी थी। उत्तर मे बहाना बनाते हुए रानी ने कहा–आज पेट मे खराबी है। शौच जाकर लौट रही हूँ। रानी के इस उत्तर से राजा फिर विचार करता है– स्त्रियो की माया विचित्र है। देवता भी उससे ठगे गये है, मेरी कौन बडी बात है। मायावी स्त्रियाँ किसी मे मन लगाती है और वचन किसी और को देती है। इन्हे अपने पति को भी मार डालने मे देर नही लगती। काम वश ये कुछ विचार नही करती। धन्य है वे साधु जिन्होने इनका त्याग कर दिया और मन निर्मल बनाया।

राजा ने अपने मन मे विचारा कि रानी को अपनी करनी का फल मिलना ही चाहिये। इस प्रकार एक ओर रोष ने जन्म लिया और दूसरी ओर विवेक जागा। उसने कहा राजन्! व्यर्थ रोष क्यो करते हो? इसमे रानी का दोष नही।

प्रत्येक जीव की प्रवृत्ति उसके स्वभाव के अनुसार होती है। मूर्खता मेरी ही है जो कि काँशी को मैने चाँदी समझा।

राजा जिनेन्द्र से निवेदन करता है– प्रभो। इस उलझन से बचाओ। सन्मार्ग दर्शाओ। इसी सोच विचार मे रजनी का अन्त हो गया और हो गया भोर। कुमुदनी ने अपनी पाँखे मूँद लीं। राजा को यह दृश्य ऐसा लगा मानो कुमुदनी कह रही हो कि–जैसे चकवी चकवे के सन्निकट रहती है, विलग होना उसे इष्ट नहीं ऐसे ही "पत्नी का धर्म है कि वह अपने पति के पास रहे"। राज–रानियो को पर–पुरुष का मुँह कभी नही देखना चाहिए।

राजा शैया से उठा और अपनी माँ के पास आ प्रणाम करके कहने लगा मॉ! स्वप्न मे मैने अपने स्थान मे महावत को देखा है। लगता है कुछ अनिष्ट होने वाला है। अत क्यो न तप करके अपने पापो का नाश करूँ। मॉ! आशीर्वाद दो। मॉ ने कहा–बेटा! स्वप्न कभी सच्चा नहीं होता। कुल देवता की पूजा करके अपनी शका का निवारण कर लो। तप करना सरल नही है।

राजा अपनी मॉ की शिक्षा सुनकर कहने लगा–मॉ! आप ठीक ही कहती है किन्तु क्या करूँ अब घर मे मन ही नही लगता।

मॉ और बेटे की बातो को सुनकर रानी ने समझा कि राजा ने उसके कुकृत्य को देख लिया है। वह तत्काल विष मिश्रित दो गिलास दूध लाई और मॉ–बेटे दोनो को एक एक दे दिया। मॉ–बेटे ने जैसे ही दूध पिया कि वे छटपटाने लगे और कुछ ही समय बाद दोनो का प्राणान्त हो गया।

कुटिल नारियो की कुटिलता को देखकर भी जो नही सम्हलता उनमे ही आसक्त बना रहता है, वह राजा यशोधर के समान बेमौत मारा जाता है। अत ऐसी नारियो का त्याग कर देना ही श्रेयस्कर है।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ४६–५२ पद्य ३७–७०]

卐

मूर्च्छा ही परिग्रह है। मात्र बाहरी पदार्थों का समूह परिग्रह नहीं है किन्तु उसके प्रति जो "अटैचमैट है" लगाव है, उस के प्रति जो रागानुभूति है जो कि उन मे एकत्व की स्थापना करती जा रही है वह ऐसी स्थिति मे 'परिग्रह' नाम पा जाता है।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "गुरुवाणी" से)

देह-सौन्दर्य परीक्षा

बहुत पुरानी घटना है। इस भारत भूमि पर अनेक चक्रवर्ती हुए किन्तु देह सौन्दर्य की दृष्टि से उन सबमे सनत्कुमार चक्रवर्ती का नाम प्रसिद्ध है। इन्द्र ने भी अपनी सभा मे इसकी प्रशसा करते हुए कहा था— चक्रवर्ती सनत्कुमार कामदेव से भी अधिक सुन्दर है। उसके सौन्दर्य का चित्रण करनेवाला कोई चितेरा नही। कोई कवि भी नही है जो लेखनी से लिखकर सम्पूर्ण सौन्दर्य प्रदर्शित कर सके।

इन्द्र द्वारा की गयी चक्री सनत्कुमार के देह—सौन्दर्य की प्रशसा सुनकर दो देव सभा से उठे और वहा से चल दिये। उन्हे ऐसा प्रतिभाषित हुआ मानो इन्द्र का चक्री सनत्कुमार हितैषी हो जिससे कि वे व्यर्थ उसकी प्रशसा कर रहे है।

वे दोनो देव वृद्ध पुरूष का स्वरूप बनाकर हस्तिनापुर आये। उन्होने राजमहल मे प्रवेश किया। चक्रवर्ती सनत्कुमार को नमस्कार करके दोनो देव उनके पास बैठ गये और कहने लगे राजन्! हम आपकी रूपराशि के दर्शनाभिलाषी है। यहॉ बहुत दूर से आये है। जब हम दोनो यहॉ आने के लिये घर से निकले थे तब हम दोनो युवक थे। यहॉ पहुचते—पहुचते राह चलने मे इतना अधिक समय गुजर गया कि हम दोनो वृद्ध हो गये। अब आप ही अनुमान लगा लीजिए कि हम कितनी दूर से आये है।

नेत्र आतुरित है आपके सौन्दर्य—दर्शन को। हमारा मानस प्रसन्न है। आपके कान्तिमान मुख को देखकर प्रसन्नता हो रही है। आपके उठे हुए गुलाबी ये गाल, जिनमे सौन्दर्य की नवाबी भरी हुई है चित्त को लुभा रहे है। उन्नत विशाल वक्षस्थल ऐसा प्रतीत होता है मानो लक्ष्मी के विराजमान होने के लिए विशेष रूप से विधाता द्वारा इसकी रचना की गयी है। वृक्ष—शाखा के समान सुन्दर सुडोल दोनो भुजाए देखकर नेत्रो को आनन्दानुभूति हो रही है। ग्रीवा की विशालता तो देखते ही बनती है। सजीली भौहे शुक जैसी सुन्दर नुकीली नासिका अन्यत्र कहॉ? आपके सुकोमल चरण—कमलो मे भाग्यवान ही जाकर शीश झुका पाते है। आपके शरीर का प्रत्येक अग एक से एक बढकर है। जैसा रुप हमने यहॉ पाया है वैसा कहीं अन्यत्र देखने मे नही आया। इस रुप-राशि के आगे तो कामदेव भी पराजित होकर पानी भरेगा। धन्य है वह सृजनहारा

जिसने विश्व मे एक निराले सौन्दर्य का सृजन किया। आज आपके सौन्दर्य को देखकर हमारे नेत्र सफल हुए हैं। उनका होना सार्थक हो गया।

देवो द्वारा की गयी प्रशसा सुनकर चक्रवर्ती सनत्कुमार फूला नही समा रहा था। अपने सौन्दर्य का उसे घमण्ड हुआ। उसने मान वश देवो से कहा– हे महानुभाव! आश्चर्य चकित होने की आवश्यकता नहीं। यह सौन्दर्य तो कुछ नहीं है। मैं स्नान कर, वस्त्रादि पहिन जब राजसभा मे बैठूँ उस समय मेरे सौन्दर्य को देखिएगा। देखकर आप लोगो का मन द्विगुणित हर्षित होगा।

इसके पश्चात् चक्रवर्ती ने वस्त्राभूषणो से अपने को सजाया। इत्र लगाया। सभा की रचना की। मन्त्रियो को पास बैठाया और सिहासन पर स्वय बैठकर उसने उन दोनो परदेशियो (देवो) को बुलवाया।

वे दोनो आये। उन्होने जैसे ही चक्रवर्ती को देखा कि उन्होने अपना सिर धुन लिया। चक्रवर्ती ने कहा–अब और तब के सौन्दर्य मे राई–पर्वत जैसा अन्तर है। वे देव बोले राजन्! हमे तो उल्टा दिखाई देता है। चक्री ने कहा–परदेशियो! तुम्हे भ्रम हो रहा है। प्रत्युत्तर मे उन्होने कहा–राजन्! ऐसा नही है। उस समय आपकी सम्पूर्ण देह निरोग थी। अब अन्तर मे विकार है। भयकर रोग उत्पन्न हो गये है। स्वर्ण–पात्र मे पीक करके ढक दे और कुछ देर बाद स्वय देख ले। हाथ कगन को आरसी क्या? तुरन्त वैसा किया गया और पीक मे कीडे देखे गये। देव स्व स्थान चले गये। चक्रवर्ती को समझ आई। उसे किये गये अभिमान का बोध हुआ। देह निश्चित ही व्याधियो का घर है। इस पर गर्व करना व्यर्थ है।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ५६–६४ पद्य २८–५६]

卐

ससार सकल त्रस्त है,
पीडित व्याकुल विकल,
इसमे है एक कारण,
हृदय से नहीं हटाया विषय–राग को,
जो है शरण, तारण–तरण।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "जैन गीता" से)

भोगों की कुटिलाई

भोग देखने, सुनने मे जैसे सौम्य प्रतीत होते है, स्वभाव मे वे उतने ही अधिक कुटिल होते है। भोग–काल मे विवेक नहीं रहता। एक समय की बात है। एक नगर मे एक सेठ सेठानी रहते थे। सेठानी सुन्दर थी। वह सौन्दर्य मे कामदेव की पत्नी रति से भी बढकर थी। सेठ के लिए वह प्राणो से भी अधिक प्रिय थी।

थोडे दिन पश्चात् सेठानी गर्भवती हुई। उसका अब वह रूप नही रहा जो पहले था। काल का प्रहार हुआ। उसकी देह में कोढ हो गया। सेठ ने उपचार कराने मे कमी नहीं की किन्तु कोढ ठीक नही हुआ। एक–एक कर दो बच्चे भी हो गये। सेठ ने उसे घर से निकाल दिया।

जो भी इसे देखता वही ग्लानि करता। कोई भीख भी नही देता था। पेट–पालना भी इसे कठिन हो गया था। बडे कष्ट से दिन निकल रहे थे। एक दिन इसने पुत्र को एक नगर के किनारे और पुत्री को दूसरे नगर के किनारे छोड दिया। अपना–अपना भाग्य है। इन बच्चो का कुछ भाग्य अच्छा था। नगर के भिन्न–भिन्न दो सेठ उन्हे उठाकर घर ले गये और उन्होने बडे प्यार से उनका लालन–पालन किया। विवाह योग्य होने पर दैवयोग से दोनो परस्पर मे विवाहे गये।

एक दिन उनके घर मुनिराज आये। वे अवधिज्ञानी थे। इन्हे देखकर उन्होने कहा– तुम दोनो की एक ही मॉ है। दोनो भाई–बहिन थे और अब पति–पत्नी हुए हो। मुनिराज से अपना वृत्त ज्ञात कर दोनो बहुत पछताये किन्तु पछताने से अब क्या होना था। इस जानकारी के बाद वे दोनो दूर–दूर रहने लगे।

भाग्य ने पल्टा खाया। इनकी माता के दुर्दिन दूर हुए। कुष्ट रोग दूर हुआ। अब उसकी देह निर्मल हो गयी। वह विचारती है कि नर जाति मे कितना स्वार्थ है। मेरे पति ने ही देखो मुझे जब से त्यागा आज तक याद ही नही की। जब स्वस्थ थी उन्हे प्यारी लगती थी किन्तु अस्वस्थ होते ही मुझे ऐसे बाहर फेक दिया जैसे जूठी पातर बाहर फेक दी जाती है। इस सब कृत्य से उसके मन मे बदले की भावना पैदा हुई। उसने मर्त्य जाति को ठगना आरम्भ किया।

योग ऐसा बना कि इसका वह पुत्र जिसे यह एक गाव के बाहर छोड

आयी थी, किसी सेठ के घर बडा हुआ और यौवन प्राप्त होने पर काम वासना से वह इसके पास आया। कर्मयोग से माँ–बेटे के मन एक हो गये। दोनो ऐसे रहने लगे जैसे पति–पत्नी रहते हैं। दोनो के एक लडका हुआ, जिसका नाम प्रीतिदत्त रखा गया।

वह पुत्री, जो माँ के द्वारा एक नगर के किनारे छोडी गयी थी तथा बडी होने पर जो धनदेव नामक अपने भाई के साथ विवाही गयी थी, मुनि से पति को अपना सहोदर जानकर ग्लानि वश उससे दूर रहना जिसने आरम्भ कर दिया था, वह सत्सग पाकर साध्वी हो गयी। उसे दिव्यबोध हुआ। इस बोध से उसने अपनी तथा अपने भाई एव माँ की स्थिति को जान लिया। वह उस ओर दौडी? जहाँ उसके भाई और माँ की जोडी रहती थी।

वहाँ पहुँचकर उसने उन्हे समझाते हुए कहा– किसका किसके साथ क्या नाता है, यह तुम्हे ज्ञात नहीं। जब इसी जन्म मे माँ–बेटा होकर तुम्हारा यह हाल है तो इतर जन्म का फिर क्या कहा जावे। अपने को सम्हालो। माँ–बेटे दोनो लज्जित हुए।

यह है भोगो की कुटिलाई। भोगी सदा दु खी रहे है और योगी सुखी। अत भोगो को त्याग योगो को सम्हालो।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ६५–६८ पद्य ६१–७६]

卐

मन्द मन्दतम कषाय कर, धर बोध चरित खरतर तपना।
वृथा भार पाषाण खण्ड सम समदर्शन बिन सब सपना।।
समदर्शन से मडित यदि हो सहज सधे अघ–विधि खपना।
मजु–मजुतम मणि–मणिक सम पूज्य बने, फिर 'शिव' अपना।।

विषम विषयमय अशन उडाया तुमने कितना पता नही।
मोह महाज्वर तभी चढा है तृष्णा तुम को सता रही।।
अणुव्रत लेना नि शकित तुमको समयोचित सार यही।
प्राय पाचक पथ्य पेय से प्रारभिक उपचार सही।।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "गुणोदय" से)

भव-रोगों की नहीं औषधि

जन्म, जरा और मरण ये तीन रोग ससार मे जीव के साथ चिरकाल से लगे हुए है। विशेषता यह है कि इन रोगो की कोई औषधि भी नहीं है। यदि है तो वह है तप।

एक बहुत पुरानी घटना है। चक्रवर्ती सनत्कुमार एक दिन विचार करते है कि नर–तन पाकर यदि भोग भोगने मे ही उसे लगा दिया जाय तो कोई बुद्धिमत्ता नही है। भोगो के लिए नर तन नष्ट करना उसी प्रकार है जैसे ध ागे के लिए मोतियो की माला तोडकर मोतियो को अलग कर देना। भोग मे सुख कहॉ? सुख तो योग मे है। योगो की साधना से ही भव रोग नशेगे।

ऐसा विचार करके चक्रवर्ती सनत्कुमार ने घर से मुख मोडा और वीतरागी साधुओ से नाता जोडा। इतना घोर तप किया कि अनेक ऋद्धियाँ स्वयमेव उत्पन्न हुईं। शरीर फिर भी निरोग नही हुआ। रोग की चिन्ता चक्रवर्ती को तनिक भी नही थी। वे तो तन से तनके निश्चल रहे।

चक्रवर्ती के उग्र तप की प्रशसा देवेन्द्र ने अपनी सभा मे की। प्रशसा सुनकर दो देवो के मन मे चक्री की परीक्षा करने के भाव उत्पन्न हुए। वे स्वर्ग से अवतरित होकर वहॉ आये जहॉ मुनिराज सनत्कुमार विराजमान थे। वे मुनिराज के आगे टहलने लगे। मुनिराज सनत्कुमार ने उन्हे देखा और पूछा–तुम कौन हो? घूर–घूर कर क्यो देख रहे हो? देवो ने कहा– मुनीश! हम बैद्य है। आप रुग्ण हो रहे है। हम नि शुल्क दवा करते है। रोग कोई भी हो हम सभी का निदान जानते है।

मुनिराज सनत्कुमार ने कहा– वैद्य लोगो! हमारे जन्म–मरण की बहुत पुरानी व्याधि है। यदि कोई दवा हो तो कहो। वे देव कहने लगे– महाराज! हमारे पास ऐसी कोई दवा नही है। हम तो केवल शारीरिक रोगो की दवा करते है।

मुनिराज ने कहा– इसमे कौन सी बडी बात है। शारीरिक रोग तो थूक लगाने से ही मिट जाते है। ज्ञानी शारीरिक रोगो से नही घबराते। उन्होने एक अगुली से थूक लेकर जैसे ही अपने शरीर के कुष्ट रोग पर लगाया कि उनकी देह निरोग हो गयी। वैद्य रूप मे आये वे दोनो देव प्रसन्न हुए। उन्होने

सब कथा यथावत कह दी। मुनिराज ने कहा— देह और चेतन दोनो भिन्न—भिन्न है। शरीर पुद्गल है। उसका स्वभाव है सड़ना, गलना। भव रोगो की एक मात्र यदि औषधि है तो वह तप है, अन्य नहीं।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त. पृ० ६६—७० पद्य ७६—८७]

卐

पाप—पुण्य का केवल कारण अपना ही परिणाम रहा।
विज्ञ बताते इस विध आगम गाता यह अभिराम रहा।।
अत पाप का प्रलय कराना प्रथम आप का कार्य रहा।
पल—पल अणु—अणु, परम पुण्य का सचय अब अनिवार्य रहा।

जब तक जिसके जीवन मे वह जीवित जागृत धर्म रहा।
मारक को भी नही मारते तब तक ना अघ कर्म रहा।।
चूकि धर्म च्युत पिता पुत्र भी कट—पिट आपस मे मिटते।।
अत धर्म ही सबका रक्षक जिससे सब सुख है मिलते।।

पुण्य करो नित पुण्य पुरुष को कुछ नहीं करती आपद है।
आपद ही वह बन जाती है सुखद सपदा आस्पद है।।
निखिल जगत को निजी ताप से तपन तपाता यदपि यहा।
सकल दलो सह कमल दलो को खुला खिलाता तदपि अहा।।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "गुणोदय" से)

खुद को नहीं सम्हाला हमने

ससार मे जो भी दिखाई देता है, वह नश्वर है, और जो दिखाई नही देता है वह है अविनश्वर चेतन। देह और चेतन के योग का नाम जीव है। देह पर है और चेतन स्व। इस जीव ने सदैव पर को सम्हाला है, स्व को नही। इसी भूल से जीव ससार मे भटक रहा है और दु ख उठा रहा है। दु ख का कारण है निज–पर–बोध का अभाव। पर की ओर दृष्टि का रहना।

एक समय की बात है, दस मित्र एक साथ तीर्थस्नान करने गये। नदी मे उन्होने अनेक डुबकियॉ लगाई। दसो ने एक साथ खूब स्नान किया। जब नदी के बाहर आये। उनके मुखिया ने गिनना आरम्भ किया। उसने नौ मित्र वहॉ पाये। एक कम होने से उसने पुन गणना की और फिर एक कम पाया। इसके पश्चात् दूसरे, तीसरे, चौथे, पॉचवे सभी ने गणना कि और सभी को नौ मित्र मिले। वे घबरा गये। सोच मे पड गये कि उनका एक मित्र कहॉ खो गया? ऐसा तो नहीं कि नदी मे डूब गया हो।

इन मित्रो की गणना को वहॉं विराजमान एक साधु देख रहे थे। उन्हे इन मित्रो के भोलेपन पर दया आ गई। उन्होने अपने पास बुलाया और कहा– तुम सबने गणना ठीक की है किन्तु प्रत्येक गणक स्वय को भूलता रहा। अपने को नही सम्हाला। इसीलिए तुम सब इतनी देर तक कष्ट उठाते रहे और सोच मे पडे रहे।

साधु ने कहा ससार की भी यही दशा है। सभी पर के सम्हालने मे लगे हुए है। स्व की ओर किसी की दृष्टि नही। मूल मे भूल हो रही है। हमे चाहिए कि पहले हम खुद को सम्हाले। आचार्य ज्ञानसागर ने ठीक ही कहा है–

यही हाल ससारी का यह भूल आपको।
पर के लिए किया करता है, घोर पाप को।।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ७१–७२ पद्य ६०–६२]

जैसी करनी वैसी भरनी

एक समय की बात है। भारत भूमि पर एक विजयपुर नाम का नगर था। उस नगर मे एक महेश्वरदत्त नामक व्यक्ति रहता था। उसके भुजवल की सभी सराहना करते थे। उसके माता–पिता वृद्ध हो गये थे। सभी मासभोजी थे। धर्म किस चिडिया का नाम है, वे नही जानते थे।

महेश्वरदत्त कोल्हू के बैल जैसा चौबीस घटे घर के काम धधे मे लगा रहता था। उसके वृद्ध माता–पिता यद्यपि कुछ काम नही करते थे किन्तु तृष्णा मे फसकर वे विश्राम नही किया करते थे।

महेश्वरदत्त का पिता निरोग न रह सका। शक्तिहीन पाकर रोगो ने आ घेरा। महेश्वरदत्त ने वैद्य बुलवाये, चिकित्सा कराई किन्तु रोग दूर नहीं हुआ। महेश्वरदत्त ने वैद्यो से कहा– औषधि देने मे कोई कमी नहीं करना। जो खर्च होगा मैं दूगा। वैद्यो ने नाडी देखकर कहा– महेश! तुम्हारे पिता का लगता है अन्त समय आ गया है। मरणरोग की कोई औषधि नहीं है।

महेश्वरदत्त ने पिता से कहा– पिताजी! अब आप ही कहिये, मैं क्या करूँ? आपका अन्त समय है कुछ मुझे कह जाइएगा। पिता ने कहा– बेटा! लक्ष्मी मुझे प्राणो से भी अधिक प्रिय रही है। मुझे दुख है कि यहाँ से मै अकेला ही जा रहा हूँ।

महेश्वरदत्त ने कहा– पिताजी चिन्ता न किजिये। मै वह अवश्य करूँगा जिससे वहाँ आपको तात आदि मिलते रहे। ब्राह्मणो के द्वारा प्रति मास आहार सामग्री वहाँ भिजवाता रहूँगा। आपको वहाँ कष्ट नही होने दूगा। और कुछ कहना हो तो निस्सकोच कहियेगा। वृद्ध पिता ने कहा– बेटा! मेरे कारण दु खी नही होना। अधिक खर्च भी नही करना। अपने कुल की परम्परा के अनुसार केवल एक पाडे की बलि दे देना बस। घर वार की सम्हाल गौर से करना। इतना कहकर वह वृद्ध यम का मेहमान बन गया। कुछ ही दिनो के बाद महेश्वरदत्त की माँ भी चल बसी। बेचारा महेश्वरदत्त माता–पिता की याद मे रोता रह गया।

वृद्धा की वासना घर वार मे रहने से मरकर वह समीपवर्ती घर मे एक कुक्कुरी के पेट से कुतिया हुई और वृद्ध का ध्यान पाडा मे रहा अत वह मरकर पाडा हुआ। इस प्रकार दोनो ने अपनी–अपनी करनी के अनुसार फल पाया।

महेश्वरदत्त के घर अब वह और उसकी पत्नी गागिला दो प्राणी ही रह गये थे। गागिला सुरूपा और विषय लम्पटा थी। अब वह निरकुश हो गई। महेश्वरदत्त को कार्य वश बाहर जाना पडता था। जब वह बाहर रहता गागिला की बन पडती थी। उसे एकान्त मिल जाता था। अपने यार से वह खुलकर प्यार करने लगी थी।

महेश्वरदत्त खून पसीना एक करके दिन रात धन कमा कर लाता और गागिला गुलछर्रे उड़ाने मे उस धन को पानी की धार के समान बहाती। पाप का घडा भरते–भरते एक दिन फूट ही जाता है। पापिनी गागिला एक दिन अपने यार के साथ सो रही थी। अचानक महेश्वरदत्त आया और किवाड बन्द देखे। उसने किवाडो की दरार से गागिला का कुकृत्य देख लिया। उसने किवाड खोलने के लिए आवाज दी। गागिला के होश उड गये। अब काटो तो खून नही। भीतर से उसने पेट दुखने का बहाना बनाया और कहा– कुछ काम कर लीजिए और थोडी देर बाद आइएगा। महेश्वरदत्त ने डाटकर किवाड खोलने को कहा। सूर्योदय मे जैसे कमलिनी के द्वार खुल जाते है और उसमे गन्ध लोलुपी भ्रमर जैसे बैठा दिखाई देता है, ऐसे ही गागिला द्वारा द्वार खोले गये और वहाँ गागिला का लोभी बैठा दिखाई दिया। महेश्वरदत्त ने उसे ऐसी मार्मिक चोट मारी कि वह वहीं ढेर हो गया।

मरते समय उसने आत्मनिदा की और कहा आज मुझे अपनी करनी का फल मिल गया। गागिला मे वासना बनी रहने से वह मरकर उसके गर्भ मे आ गया।

महेश्वरदत्त ने गागिला से आधी बात भी नही की। बस वह शान्त रहा। उसने सोचा– इसमे मेरा ही दोष है, गागिला का नहीं। यदि लकडी अच्छी न हो तो दोष लकडी का नहीं, वृक्ष का होता है। यदि मै बाहर न रहता तो गागिला को एकान्त नही मिलता और एकान्त नही मिलता तो घटना भी नही घटती। अत दोष मेरा ही है।

इधर गागिला ने सोचा– इतना सब कुछ होने पर भी पति महेश्वरदत्त ने जब कुछ नही कहा है तो उसे भी कुछ सोचना चाहिए। वह पापो से विरत होकर रहने लगी। कुछ दिन बाद उसके पुत्र ने जन्म लिया। दोनो बडे प्रसन्न हुए।

पिता की श्राद्ध का दिन आया। महेश्वरदत्त ने अपने पाडे की बलि दी। उसे खुद ने मारा और उसका मास भी स्वय ने पकाकर मेहमानो को जिमाया। वह कुतिया भी समय पर वहाँ आई। महेश्वरदत्त ने उसे ऐसा लट्ठ

मारा कि वह वहाँ से तुरन्त भागी और पाड़े की हड्डियाँ चबाने लगी। अपनी करनी का फल पाना जो शेष रहा गया था वह दोनों ने पाडा और कुतिया की पर्याय में पाया।

श्राद्ध के बाद एक दिन महेश्वरदत्त अपने पुत्र को खिला रहा था। किसी मुनि ने उसे देखा। वे इसे देख शीश धुनने लगे। महेश्वरदत्त के पूछने पर उन्होंने कहा– बालक! जिस पाडे को तुमने मारा है वह तुम्हारा पिता है और बेचारी यह कुक्कुरी तुम्हारी माता है। जो तुम्हारी पत्नी का यार था, मरकर वही तुम्हारा पुत्र हुआ है। मेरी बात की यदि प्रतीति न हो तो कुतिया यह बात स्पष्ट करेगी। उसे जातिस्मरण हुआ है।

महेश्वरदत्त ने कुतिया के आगे जाकर क्षमा याचना करते हुए कहा– हे जननि! ऐसा कीजिए कि जिससे मेरा सशय दूर हो और मैं जिनेन्द्र का ध्यान करूँ। कुतिया उसके घर गयी और वहाँ एक स्थान की मिट्टी खुरचने लगी। महेश्वरदत्त ने उस भू–भाग को खोदा तो उसे रत्नो का खजाना मिला। वह बहुत प्रसन्न हुआ।

सबेरा होते ही वह मुनिराज के पास आकर उनके चरणो मे गिर गया। वह कहने लगा– महाराज! यह ससार बडा विचित्र है। शत्रु मित्र हो जाता है और मित्र शत्रु। मैने स्वार्थ वश अपने माता–पिता की कैसी दुर्गति की यह आप देख ही रहे हैं। आप पतित पावन है। मेरा कल्याण करो। महाराज ने कहा– महेश्वरदत्त। राग त्याग समता भाव लाओ। सोऽह जपो। और मुक्ति–रमणी को वरो।

महेश्वरदत्त ने महाराज का उदपेश सुनकर घर बार ऐसे त्याग दिया जैसे साप काचली त्याग देता है। पश्चात् चिदानन्द का ध्यान करते हुए मरकर देव हुआ। इस प्रकार अपनी करनी का फल इसे भी प्राप्त होने मे देर न लगी।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ७७–८५ पद्य २२–६५]

卐

जैन दर्शन का हृदय है अनेकान्त। और अनेकान्त का हृदय है समता। दुनिया का कोई भी मत ऐसा नहीं है, जिस का जैन दर्शन से सम्बन्ध न हो।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज के प्रवचनो से)

जीवन क्षणभंगूर है भाई

कानपुर नगर की एक घटना है। वहाँ एक सेठ रहता था। उसके पास बहुत धन था। सभी उसे लालाजी कहा करते थे। उसकी पत्नी रूपवती थी। अच्छा कारोबार था। अनेक दुकाने थीं। नौकर–चाकर दिन–रात सेवा करते थे। लालाजी को सभी जानते थे। इस प्रकार वे पूर्ण सुखी थे। यदि उन्हे कोई कमी थी तो केवल यही कि वे निस्सन्तान थे।

सन्तान के लिए यन्त्र मन्त्रादि रुप अनेक उपाय किये गये किन्तु सफलता हाथ नही आई। भाग्य जब साथ नही देता तब ऐसा ही होता है। पचास वर्ष की उम्र मे लालाजी का भाग्य पलटा। उनकी पत्नी गर्भवती हुई। पति–पत्नी दोनो हर्षित हुए। नौ महिने नौ दिन के समान निकल गये।

पुत्र का जन्म हुआ। लालाजी ने हर्ष पूर्वक पुत्र का नाम आशेष रखा। वह राकेश के समान बढने लगा। सोलह वर्ष की अवस्था मे पूर्ण चन्द्र के समान कान्तिमान हो गया। समान कान्तिमान एक युवती के साथ उसका विवाह हुआ। वह युवती अधिक समय जीवित न रह सकी। लालाजी ने आशेष का दुबारा विवाह किया किन्तु दो–चार मास बाद वह बहू भी चल बसी। अब लालाजी को आशेष का तीसरा विवाह करना पडा। इस बहू से एक पुत्र हुआ। लालाजी पौत्र पाकर बहुत हर्षाये। याचको को खुलकर दान दिया। "बालक चिरायु हो" कहकर हितैषियो ने आशीर्वाद दिये।

इसी समय एक पुरूष ने आकर कहा–लालाजी नही रहे। यह सुनकर आशेष दौडकर घर के भीतर जाने लगा कि वह द्वार की चौखट से जा टकराया। इतनी गम्भीर चोट आयी कि आशेष भी शेष न रहा।

इस प्रकार पिता और पुत्र दोनो स्वर्ग सिधारे। लालाजी की पत्नी रोती रह गई। और सोचती रही जीवन की गति। कब, कहॉ, किसका क्या होना है? कहा नही जा सकता। अत जीवन व्यर्थ न खोवे। कर सके तो आत्म साधना करे।

इस कथा से शिक्षा मिलती है कि जीवन की क्षणभगुरता पर प्रतीति करे और स्वय को सदैव सावधान रखे। जीवन ही नहीं इस ससार की समस्त सम्पदा ऐसी ही है।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ८७–९० पद्य ८–२४]

होनी हो के ही रहे

होनहार को अब तक कोई भी टाल नहीं सका। घटना कौरव–पाण्डवो के समय की है। नेमि–वैराग्य के पश्चात् एक दिन श्रीकृष्ण धर्मोपदेश सुनने उनके पास पहुँचे। उन्होंने नेमि से कहा–प्रभो! यह राज्य कब तक रहेगा? श्री नेमि ने कहा–हे कृष्ण! बारह वर्ष पर्यन्त यह राज्य रहेगा। इसके पश्चात् द्वीपायन के द्वारा तुम्हारी नगरी द्वारिका भस्म की जावेगी। कुछ मद्यपायी जन उन्हे कष्ट देगे। वे रूष्ट होगे और द्वारिका भस्म होगी। केवल तुम व तुम्हारा प्रिय भाई बलभद्र बच सकेगा। तुम्हारा मरण जरत्कुमार के द्वारा होगा।

श्रीकृष्ण ने कहा–प्रभो नेमि! आप क्या कह रहे हैं। ये लोग मदिरा पीते ही नहीं। ये तो अष्टमूलगुण धारी हैं। मेरी समझ मे नही आता आपका कथन कैसे सत्य होगा। फिर यह भी सुनिश्चित है कि आपके वचन मिथ्या नहीं होते। क्या निराश होकर बैठ रहूँ? क्या करुँ कुछ समझ मे नही आता।

श्रीकृष्ण ने सोचा–"न रहेगा बास और न बजेगी बाँसुरी"। उन्होंने नगर मे घोषणा कराई कि जिसके घर मदिरा होगी उसे प्रॉणदण्ड मिलेगा। द्वीपायन ने भी द्वारिका–दहन का स्वय को निमित्त जानकर वहाँ रहना ठीक नहीं समझा था। वे बचाव की दृष्टि से योगी होकर बहुत दूर चले गये।

प्रजा भी अब निश्चिन्त थी। उसके मन मे कोई आशकाएँ नहीं थीं किन्तु होनहार तो होकर ही रहती है, वह टाले नही टलती। द्वीपायन को समय विस्मृत हो गया। उन्होने द्वारिका–दहन का नेमि कथित समय गत जाना और वे द्वारिका आये तथा द्वारिका के बाहर उपवन मे ठहर गये। कुछ यादव घूमने निकले थे। उन्होने इन्हे देखा। कौतूहल वश वे इन्हे मारने दौडे। इन यादवो ने प्यास के कारण कुवासित कुण्डो का पानी पी लिया था जिससे वे मति–भ्रष्ट हो गये थे।

यादवो द्वारा कष्ट दिए जाने से मुनि द्वीपायन की कोपाग्नि बढी। इससे हजारो वर्ष तक अक्षुण्ण बनी रहनेवाली नगरी क्षणभर मे भस्म हो गयी। इस अग्नि से कृष्ण और बलराम का कुछ नही बिगड़ा। उन दोनो ने सोचा कि इस नगरी मे सब कुछ भस्म हो गया है अत यहाँ से अब अन्यत्र चले जाना चाहिये।

ऐसा सोचकर वे दोनो भाई वहॉ से चल दिये और चलते–चलते कौशाम्बी के निकट पहुँच गये। वहाँ की तरुमाला को देखकर कृष्ण के मन

मे प्राकृतिक सौन्दर्य देखने की इच्छा हुई। उन्होने भाई बलराम की स्वीकृति ली तथा दोनो भाई वृक्षो की ठण्डी छाँव मे विश्राम करने लगे।

इसी समय कृष्ण को प्यास ने सताया। उन्होने बलराम से कहा—भैया मुझको प्यास लगी है। मेरा दम घुट रहा है। अगर पानी नही मिला तो मै पल भर भी नही रह सकूँगा। बलदेव जल की खोज करने लगे और चक्रपाणि—कृष्ण लेट गये। उसी वन मे जरत्कुमार घूमता—फिरता वहाँ आ पहुँचा जहाँ कृष्ण लेटे हुए थे।

कृष्ण के पगतल मे चमकते हुए पद्म को देखकर जरासन्ध समझा कोई मृग है। अत उन्होने उस ओर तीर चला दिया। तीर जाकर कृष्ण के पैर मे भिध गया और कृष्ण सदा के लिए सो गये।

जो कृष्ण जिस किसी प्रकार द्वारिका दहन की ज्वालाओ से बच निकला, जो चाणूरादि मल्लो से नही घबराया, पूतना भी जिसका बाल—बाँका न कर सकी, वह कृष्ण केवल तीर लगने के बहाने मरण को प्राप्त हुआ।

इन घटनाओ से ज्ञात होता है कि होनी होके ही रहती है। द्वारिका भस्म न हो, कृष्ण का मरण टले इसके लिए विविध उपाय हुए किन्तु कोई उपाय सार्थक नही हुआ। जो होना था वही हुआ। उसके लिए जो कारण अपेक्षित थे, वे भी समय पर आ उपस्थित हुए। अत यह कहना ठीक ही है कि—होनी होके ही रहे।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ६१—६६ पद्य २६—५०]

卐

योगी स्वधाम तज बाहर भूल आता,
सद्ध्यान से स्खलित हो अति कष्ट पाता।
तालाब से निकल बाहर मीन आता,
होता दु खी, तडपता, मर शीघ्र जाता।।८१।।

(आचार्य विद्या सागर द्वारा रचित निजानुभव शतक से)

परिवार-परीक्षा

एक समय की बात है। एक नगर में एक ऐसा परिवार रहता था, जिसमे बहु सख्यक लोग थे। माता–पिता, भाई–बहिन, भावज, बहनोई सभी पास–पास रहते थे। एक दिन इस परिवार का छोटा सदस्य बीमार हो गया। बीमारी के कारण उसे बहुत वेदना थी। वह बिना नीर के मछली के समान तडफ रहा था।

एक–एक कर सभी कुटुम्बी उसके पास आ गये थे। सभी देख रहे थे और सभी को लग रहा था कि अब दम निकला। ऐसा देखते–देखते बहुत समय निकल गया। रोगी भी घबरा गया। कहने लगा–हे प्रभो! इस जीवन से तो मर जाना ही बेहतर है।

इसी बीच वहाँ एक परदेशी आया। उसने कहा–मुझ पर शारदा प्रसन्न है। मै जिसे छू देता हूँ उसका रोग पलभर मे दूर हो जाता है। अत इसे कैसा रोग है? मैं छूकर देखना चाहता हूँ। मैं विदेशी हूँ अत आप लोगो को और कैसे विश्वास दिलाऊँ। इस पर रोगी बच्चे के पिता ने कहा–आइये और चिकित्सा कीजिये। आपको मुँह मागा पारिश्रमिक दूगा।

उस परदेशी ने कहा–मैं पारिश्रमिक नहीं लेता। उसने रोगी का हाथ अपने हाथो मे लिया और कहा–इसे कोई रोग नही है। प्रेत–बाधा है। पिता ने कहा–प्रेतबाधा हटाने का कोई उपाय भी है कि नहीं। उपाय है क्यो नहीं, उपाय तो है। इसे निरोग करने के लिए तुम सबमे किसी एक को अपने को अर्पित करना होगा।

इस प्रश्न पर क्षण भर के लिए सन्नाटा छा गया। पश्चात् लोगो ने कहा हे वैद्य! इसे निरोग कीजीये। इसके बाद जिसे आप कहेगे वही अपना समर्पण कर देगा। कोई मना नही करेगा क्योकि यह तो सभी को प्राणो से अधिक प्यारा है।

वहाँ रोगी के पास उपस्थित सभी जन सोच रहे थे कि वैद्य गप्प मार रहा है। कहीं कोई किसी के बदले मे निरोग हुआ है? अपने किये कर्मो का फल जीव को स्वय भोगना पडता है। अगर निरोग हो गया तो ठीक ही है अन्यथा परदेशी की पोल भी खुल जावेगी। ऐसा सोचकर सभी ने वैद्य को उपचार करने बार–बार बाध्य किया।

परदेशी वैद्य ने रोगी को चादर उढा कर मत्र पढना आरम्भ किया। रोगी को आराम मिला और चादर रोगी के पसीने से भीग गयी। वैद्य ने एक

बर्तन मे उस चादर को निचोड़ा और बर्तन के पानी को पीने के लिए सभी से कहा।सभी इधर–उधर झाकने लगे, कोई तैयार नहीं हुआ।

वैद्य ने रोगी के पिता को बुलाकर कहा। पिता ने उत्तर दिया कि मैं तो पी लेता किन्तु दुकान का काम करनेवाला कोई नही है, अत पीने मे असमर्थ हूँ। माँ कहने लगी–मेरे बिना घर का सब काम थकित हो जावेगा, अन्यथा मै पी लेती। भाभियो ने भाइयो को पीने के लिए मना कर दिया था। बहिनो को उसके बहनोइयो ने रोक दिया। पत्नी से जब पीने को कहा गया तो उसने कहा–अभी बच्चा छोटा है। इसे दूध कौन पिलावेगा? इस प्रकार सभी को अपना जीवन प्रिय रहा। किसी ने भी उसे बचाने के लिए अपना त्याग नहीं किया। क्या माता, क्या पिता, क्या भाभी और क्या भाई, क्या बहिन, क्या बहनोई कोई काम नही आया। सभी स्वार्थमय दिखाई दिये।

वैद्य ने बाध्य होकर वह जल रोगी के ऊपर उड़ेल दिया। अब उसे पहने से दुगनी पीडा होने लगी। वैद्य जहाँ से आया था, विलखता हुआ वहाँ चला गया।

रोगी सोचता है–निश्चित ही परिजन स्वार्थी होते है। जब तक स्वार्थ सधता है वे साथ–साथ रहते है। इसके बाद ऐसे छोड देते है जैसे पत्ते विहीन वृक्ष को पक्षी त्याग देते है। यदि स्वस्थ हो गया तो सयमी होकर तप धारण करूँगा। ऐसे विचार आते ही उसका रोग शान्त हो गया। उसे नीद आई। उसे स्वप्न मे किसी ने कहा–हम दोनो स्वर्ग मे थे। तुम मनुष्य हो गये अत वैद्य रुप मे मै देव आया हूँ। भोगो मे न फॅस जाऊँ, मुझे सचेत करना यह तुम्हारा कहना था अत मैने तुम्हे सचेत कर दिया। यहॉ तो आपने स्वय देख लिया कि सभी मतलबी है। अत समय व्यर्थ न खोना। इसके बाद वह जाग गया। उसे स्वस्थ होकर सयम धारण करने का लिया नियम याद आया।

रोगी के स्वस्थ होने पर सभी ने अपने अपने देवो का स्वस्थ होने मे प्रभाव बताया। रोगी ने कहा– देवी दानव यदि रक्षा करने मे समर्थ होते तो घर बुजुर्गों से रहित नहीं होते। कोई को फिर कष्ट भी नही होते। मै तो अपनी मनोभावना से ही स्वस्थ हुआ हूँ। कोई खाना खावे और किसी अन्य का पेट भरे ऐसा मानने को मैं तैयार नही हूँ। जो जैसा करता है वह वैसा ही सुख–दुख भरता है।

रोगी कहता है कि अब सयम लेने का विचार है। अब चाहता हूँ कि पवन के समान स्वतन्त्रता पूर्वक विहार करूँ। मै अब सभी से क्षमाप्रार्थी हूँ। भाई

जन कहने लगे– भइया! फूलो पर रहनेवाली देह कॉटो को कैसे सहेगी? गीतो को सुननेवाला ह्रदय जगल मे शेर की दहाड़ सुनकर दहल जावेगा। वहाँ पलग नही होगा। बिना नहाये रहना पड़ेगा, पैदल चलना पडेगा। तुम्हारा वहाँ निर्वाह होना कठिन है।

उत्तर मे रोग से मुक्त उस भाई ने कहा–जहाँ गुरु की कृपा होती है वहाँ जगल मे भी मगल आ विराजते है। कन्दराएँ मन्दिर बन जाती है। सोने को भूमि उत्तम है जहाँ खटमल नहीं होगे। आकाश उत्तम वस्त्र होगा। वह न मलिन होगा और न जीर्ण। ज्ञान–सरिता मे स्नान करूँगा। आलोचना रूपी तैल से मालिस करता रहूँगा जिससे दूषण दूर होते रहेगे। मेरी तो भावना है कि मुझसे किसी को कोई बाधा न हो। अच्छे समागम मे जाने मे देर क्यो लगाऊँ? अच्छा होता आप सब साथ चलते।

बान्धव कहने लगे–हे भाई! तुम ही जाओ। हमे ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं। हम घर रहकर ही भगवद्भक्ति करेगे। हम मनुष्य हैं, पशु–पक्षी नही जो जगल जावे। यह सुनकर उस मुमुक्षु भाई ने कहा–जगल जाना बुरा नही है। राम क्या जगल मे नही रहे? कृष्ण क्या गाये चराने जगल नहीं जाते थे? त्याग का महत्त्व है। त्याग ही जीव के कल्याण का बीज है।

बान्धव कहने लगा–निश्चित ही भोग दु खप्रद है। यह सभी जानते है किन्तु इनका त्याग साधारण प्राणी नही कर सकता। जिसकी भावना हो वह त्याग दे हमारी शक्ति नही। ऐसा सुन वह सयमी हो गया। कथा का सार है कि परिवार स्वार्थ मय है। अपने स्वार्थ के लिए परिजन कल्याण करने मे बाधाएँ डालते है किन्तु यथार्थता जाने और माने तथा तदनुकूल आचरण करे, इसी मे सार है।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ६७–११० पद्य १–६३]

卐

ध्यान–मन, वचन, काय को रोक करके रुचिपूर्वक किसी पदार्थ मे लीन हो जाना है। पचेन्द्रिय के विषय मे लीन होना आर्त–रौद्रध्यान है और आत्म–तत्व को उन्नत बनाने के लिये अहर्निश प्रयास करना, सब कुछ गौण करके उसी मे डटे रहना धर्मध्यान शुक्ल ध्यान है।

(आचार्य विद्या सागर द्वारा रचित *गुरुवाणी से)*

बुद्धिमान राजा बुद्धिमान चोर

एक समय की बात है एक राजा था। वह हर प्रकार से सुखी था। एक दिन पश्चिम रात्रि मे उसकी नींद भग हो गयी। वह बिचार करता है कि मेरी मनमोहक नारियॉ है, अनुकूल मित्र हैं, कुटुम्बी-जन स्नेही हैं, सभी सेवक मेरा कहना मानते है, पर्वत के समान ऊँचे हाथी है, मन तुल्य गमन करनेवाले घोडे है। इस प्रकार वह बार-बार बडी विनय के साथ कहता है।

उसी रात एक चोर उस राजा के महल मे चोरी करने आया था। वह चुपचाप राजा के पलग के नीचे बैठा था। वह विज्ञ था। उस बुद्धिमान राजा के वचनो को बडे स्नेह से सुन रहा था। अनेक बार एक प्रकार के वाक्य सुनने से उसके मन मे उन वाक्यो के आगे की बात उत्पन्न हुई। वह शान्त न रह सका। कहते हैं वाद्य वजने पर नाचनेवाले के पैर स्वयमेव थिरकने लगते हैं। ऐसे ही विद्वान् होने से वह चोर भी राजा के उन वाक्यो को सुनकर आगे की बात कहने के लिए अवसर पाकर बोल ही पड़ा कि राजन्! सब कुछ होते हुए भी ऑख बन्द होने पर कुछ भी नहीं है, ऐसा जानो। आपका सब वैभव इन ऑखो के रहने तक ही है। ऑख मिची फिर कुछ नहीं।

चोर की बात सुनकर अब तक राजा का अपनी रानियो, मित्रो परिजनो, सेवको, हाथियो, घोडो आदि पर जो गर्व था वह पल भर मे चूर-चूर हो गया। वह इस प्रकार चला गया जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार।

राजा का हृदय-कमल खिल गया। चारो ओर सुगन्ध फैली। सद्विचारो की झडी लग गयी। वह सोचता है और मन को सकेत कर कहता है रे मन! आज जिस राज्य के तुम राजा हो कल इसी प्रकार इस राज्य का कोई दूसरा राजा था। ऐसे ही अनेक राजा हो गये है और अनेक राजा होगे। अपने सुकृत से सभी सुखी और दुष्कृत से दु खी होते हुए अपनी देह खोते रहेगे। हे मन! तुमने कभी भोगो को त्याग कर योग धारण नही किया, सहज शान्ति-प्राप्त नही की। अब तक तुम भोगो की क्षणभगुरता नहीं समझ पाये। उन्ही की उलझन मे उल्झे रहे, और इसी उधेडबुन मे तुमने अनेक प्रकार के कष्ट उठाये है। अब तो ऐसा करो कि जिससे फिर इस ससार मे न आना पडे।

हे मूढ मन! तुम पर को अपना मान रहे हो, अस्थिर को स्थिर जान रहे हो, स्वय को राजा जानकर और राज्य का विस्तार देखकर तथा उसे अपना

मानकर व्यर्थ अकड़ रहे हो। तुम्हारा यह गर्व–गौरव ग्वाले के समान है जो दूसरो की गायो को अपनी गायें कहता है और गर्व करता है। तू उस धोबी के समान है जो धोने के लिए लाये गये दूसरो के वस्त्रों को अपने कहकर गर्व करता है।

रे मन! यह घिनौनी देह और यह सब ठाठ, यौवन बिजली के समान क्षणभगुर है। स्वजन पथिक स्वरूप है। हाथी–घोड़े इन्द्रजाल के समान हैं। आँख पलकते ही ये दिखाई नहीं पडते। जल–बुदबुद् के समान यह सब देखते ही देखते विघट जावेगे। तत्र, मत्र, यत्र कोई भी इन्हे न बचा सकेगा। शारीरिक हृष्ट पुष्टता भी पल भर मे मिटनेवाली है। कल मै ऐसा करूँगा ऐसा मत सोच। कौन जानता है कि कल आने के पहले ही काल आ जावे। तब सारा वैभव यहीं पडा रह जावेगा। सब दगा दे जावेगे, एक तगा भी सग नहीं जाएगा। कुटुम्ब तो दूर तेरा शरीर भी साथ जानेवाला नही है जिसे तू बडे प्यार से मल–मल कर धोया करता है। इस देह के नौ द्वारो से मलिनता निकलती है फिर भी तू उससे नेह करता है।

मोह के आधीन होकर तू भिखारी बना फिर रहा है। तुझे अपने आत्म–वैभव का बोध नहीं। भोग रूपी सर्प–विष बिना गुरु–गारुडि सन्देश के दूर नहीं होता। उसके अभाव मे नीम के समान कडवा लौकिक धन्धा मधुर प्रतीत होता है। भोग तज, समता ला और शान्ति पा।

देव भी तू अनेक बार हुआ है। वहाँ के भोग भोगे है। फिर ये भोग क्या है। ओस बूद से प्यास नहीं मिटती। सतोष धारण कर जगज्जयी बनो। गन्ने की गाठ बो देने से नया गन्ना उत्पन्न हो जाता है और उसे चूसने से जैसे घोर दु ख होता है ऐसे ही मानव देह से भोग भोगते हुए दुखी होता है और तप करके सुखी। त्याग मानव का धर्म है। अपने धर्म का निर्वाह करो। शत्रु मित्र पर समान दृष्टि रखो। अपने–अपने गुण पर्यय को सभी वस्तुएँ लिए है। उनका गुण कभी नहीं क्षय होता। ऐसा विचार कर हर्ष–विषाद करना छोडो।

जन्म–मरण की एक ही औषधि है– जिन वचनामृत। इसका सेवन स्वय के लिए और सबके लिए यति ही किया करते है। वे करुणा के सागर होते है। निराकुल रहने मे उन्हे सुख मिलता है। उन्हे यदि कोई उनके मार्ग मे बाधक दिखाई देता है तो वह है देह। वे उससे उदासीन रहते है और सतत आत्म साधना किया करते हैं। यतिधर्म के बिना इस जग से छुटकारा पाना असभव है और यतिधर्म का निर्वहन होता है निर्ग्रन्थता से, दिगम्बरत्व से अत रे मन! दिगम्बर साधु होकर आत्मसाधना कर।

कहते है यह राजा और कोई नहीं भोज था। उसने चोर को चोर न समझकर अपना हितैषी माना था और उसे दण्ड न देकर पुरस्कृत किया था। इस घटना से प्रभावित होकर वह निर्ग्रन्थ–दिगम्बर साधु हो गया था। उसके साथ उस चोर ने भी निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली थी।

बुद्धिमान जन ऐसे ही होते है। छोटा सा निमित्त पाकर भी वे कल्याणमार्ग मे लग जाते है। उनके बन्धन टूटने मे भी देर नही लगती।

[गुण सुन्दर वृत्तान्त पृ० ११३–११६ पद्य १६–४४]

卐

नीति न्याय से धन अर्जन कर जीवन अपना बिता रहे।
उन का वह धन बढ नही सकता साधु सन्त यो बता रहे।।
पूर्ण सत्य है नदियाँ बहती जग मे जल से भरी–भरी।
मलिन सलिल से सदा भरी वे विमल सलिल से कभी नही।।

आता है कब किस विध आता काल कहाँ से आता है।
महादुष्ट है काल विषय मे कुछ भी कहा न जाता है।।
वह तो निश्चित आता ही पै तुम क्यो बैठे मन माने।
विज्ञ[1] करो नित यतन निजोचित निज सुख पाने शिव जाने।।

निर्बल तन मन बालक जब थे नहीं हिताहित विदित हुये।
युवा हुए कामान्ध युवति तरु वन मे निशि–दिन भ्रमित हुए।।
प्रोढ हुए धन तृषा बढी फिर कृषि आदिक कर विकल बने।
वृद्ध हुए फिर अर्धमृतक कब जनम धरम कर सफल बने।।

(आचार्य विद्या सागर द्वारा रचित *गुणोदय से)*

मतिवर ग्वाला

आज से अनुमानत. दो हजार वर्ष पूर्व की बात है। भारत के दक्षिण में पिदडनाडु नाम का एक जिला है। इस जिले मे एक कुरुमराई नाम का नगर था और इस नगर मे एक करमण्डु नाम का व्यापारी रहता था। उसकी श्रीमती नाम की एक पत्नी थी। घर मे दूध के लिए गाये थीं। गायो को चराने एव अन्य कार्य के लिए इनका एक कर्मचारी था, जिसका नाम मतिवर था। वह जाति से ग्वाला था।

प्रतिदिन की भाँति मतिवर गाये चराने जगल गया। वहाँ एक विचित्र घटना घटी। जगल दावाग्नि से जल रहा था। मतिवर ने देखा कि जगल के बीच कुछ पेड हरे खडे है और उनके चारो ओर के पेड जल रहे हैं।

यह देखकर मतिवर आश्चर्य मे पड गया। उसे वृक्षो के हरे होने का करण जानने की उत्सुकता हुई। वह उस स्थल के निकट पहुँचा। उसने देखा कि यहॉ एक झोपडी बनी हुई है। वह साधु का आश्रम प्रतीत होता था। वहॉ उसे एक पेटी दिखाई दी। उसनें पेटी को खोलकर देखा तो उसे उस पेटी मे शास्त्र प्राप्त हुए। उसे अपने आश्चर्य का करण ये शास्त्र ही समझ मे आये। उसे विश्वास हुआ कि इन्ही शास्त्रो के प्रभाव से ये वृक्ष नही जले, हरे भरे खडे है। उसने उन शास्त्रो की पेटी ससम्मान वहॉ से उठा ली और अपने घर ले आया। उनकी वह प्रति–दिन भक्ति भाव पूर्वक पूजा करने लगा।

योग की बात है एक दिन आहार के समय एक निर्ग्रन्थ मुनि उस नगर मे करमण्डु के घर के पास से आहार के लिए निकले। करमण्डु और उसकी पत्नी दोनो ने उन्हे पडगाह लिया। मुनिराज ने करमण्डु के घर निर्विघ्न आहार लिये और वे आहार लेकर प्रसन्न हुए।

कर्मचारी मतिवर महाराज की आहारचर्या देखता रहा। उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने अपने नेत्रो का होना सार्थक समझा। उसने जगल से प्राप्त वे शास्त्र लाकर मुनिराज को भेट किये ओर उन्हे जगल की सम्पूर्ण घटना सुनाई। घटना सुनकर महाराजश्री को प्रसन्नता हुई।

महाराजश्री जब उठकर विहार करने लगे तब व्यापारी करमण्डु और उसकी स्त्री श्रीमती तथा कर्मचारी मतिवर तीनो ने उन्हे नमोऽस्तु कहते हुए

प्रणाम किया। प्रत्युत्तर में महाराज श्री ने उन तीनो को आशीर्वाद स्वरूप अपनी हथेली उनके सिरो पर रखकर धर्मवृद्धि दी तथा उठकर विहार कर गये।

शास्त्रदान देकर कर्मचारी मतिवर ने वैसा ही पुण्यार्जन किया जैसा आहार दान से करमण्डु ने। शास्त्रदान का करमण्डु पर विशेष प्रभाव पड़ा। अब वह कर्मचारी मतिवर को पुत्र के समान चाहने लगा। उसकी पत्नी श्रीमती भी उसे वैसा ही स्नेह देने लगी जैसा कि एक माँ अपने पुत्र से स्नेह करती है। मतिवर अपने मालिक—मालकिन के व्यवहार से बहुत ही प्रसन्नता के साथ उनके घर रहने लगा। इस प्रकार उन तीनो के बीच पारस्परिक स्नेह बढता ही गया।

कालान्तर मे यह मतिवर मरकर स्नेह के कारण श्रीमती के गर्भ मे आया और प्रसूति—काल पूर्ण होते ही श्रीमती ने इसे जन्म दिया। करमण्डु और श्रीमती दोनो इसे पाकर बहुत प्रसन्न हुए और उन दोनो ने इस बालक का नाम कुन्दकुन्द रखा। यही बालक आगम का ज्ञाता होकर कुन्दकुन्दाचार्य के नाम से विख्यात हुआ।

अपूर्व है शास्त्रदान की महिमा।

[स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैनधर्म पृ० १—२]

卐

स्व को स्व रुप मे जान कर, पर को पर रुप मे जान कर, पर का ग्रहण न हो बस यही प्रयोजनभूत तत्व का ज्ञान है। आप को उपादेय की प्राप्ति व हेय का विमोचन हो गया मोक्षमार्ग प्रारम्भ हो गया। यदि स्व का ग्रहण व पर का विमोचन नहीं होता है, उस के प्रति जो राग है वह नहीं हटता है तो ध्यान रहे कार्य मे सिद्धि नही होगी।

(आचार्य विद्या सागर द्वारा रचित गुरुवाणी से)

गुण-अवगुण संगति फले

जीव, सदा जीवो के साथ रहता है। अकेला रहकर जीवन–यापन नहीं कर सकता। वह जैसे जीवो के साथ रहता है उसका आचरण भी वैसा ही हो जाता है। भले जीवों के साथ रहने से उसमें भलाई का सञ्चार होता है और बुरे जीवो के साथ रहने से उसमे बुराइयाँ आ जाती है।

एक समय की बात है, किसी बहेलिये ने दो तोते पकडे। वह उन्हे बाजार ले गया। उनमे एक तोते को किसी वेश्या ने खरीदा और दूसरे तोते को किसी पण्डित ने। इस प्रकार वे तोते बहेलिये के पास से भिन्न–भिन्न स्थान पर ले जाये गये।

वेश्या के यहाँ विविध प्रकार के असद् लोगो का आना जाना होता था। समय–समय पर वे भड वचन भी बोलते थे। तोता उन वचनो को प्रतिदिन सुनता था। सुनते–सुनते उसे वे वचन याद हो गये और उसने उन्हे बोलना भी सीख लिया था।

एक दिन वेश्या को महफिल करने राज–दरबार मे जाना पडा। वह अपने साथ तोते को भी ले गयी। जैसे ही वह राज–दरबार मे पहुची कि उसके तोते ने राजा को भड वचन कहना आरम्भ किये। राजा सुनकर कुपित हुआ। उसने उसे मार डालने का आदेश दे दिया। अपने मारे जाने की बात सुनकर उस तोते ने राजा से निवेदन किया राजन्! मेरा एक भाई है जो पण्डित गिरिधर शर्मा के यहाँ रहता है, मै मरने से पहले उससे मिलना चाहता हूँ।

राजा ने पण्डित गिरिधर शर्मा को बुलवाया और अपने साथ अपने तोते को लाने की सूचना भी भेज दी। पण्डित जी के यहाँ जो लोग आते वे पण्डित जी को प्रणाम कहते थे। तोता आनेवालो से यह शब्द नित्य सुनता था, अत उसे वह याद हो गया था तथा उसे नित्य अभ्यास करके बोलना भी उसने सीख लिया था।

पण्डित जी तोते को लेकर राज–दरबार मे पहुचे। पण्डित गिरिधर शर्मा कुछ बोल ही नही पाये थे कि तोते ने कहा–राजा प्रणाम, प्रणाम। राजा तोते के मुख से प्रणाम शब्द सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। राजा ने कहा–जीते रहो तुम और तुम्हारा सगी।

वेश्या के यहाँ का तोता राज–दरबार मे ही था। उसने राजा के दिये आशीर्वाद को ध्यान से सुना। उसने तुरन्त राजा से निवेदन किया–राजन्! इस तोते का सगी तो मै ही हूँ। अत अब तो मै भी जीता रहूँगा।

राजा वचन–जाल मे फँसकर असमजस मे पड गया। शर्माजी के तोते ने राजा को चिन्तित देखकर कहा–राजन्! इसमे चिन्तित होने की क्या बात है? मेरे साथी ने सचमुच भड वचन बोला है। भड वचन बोलकर उसने आपके साथ अभद्रता पूर्ण व्यवहार किया है किन्तु आप तो सज्जन है। सज्जन ही नहीं सज्जनो के मुखिया है। आपका तो काम बुरा करनेवालो के साथ भला व्यवहार करना है। पृथ्वी–पर वृक्ष जब अपने पत्थर मारनेवालो को भी मिष्ठ फल प्रदान करते है, तो फिर आप तो पृथ्वीपति है। रक्षा करना आपका धर्म है। आप तो सम्पूर्ण प्रजा से प्रेम करते है। सभी को न्याय देते हैं। अपनी त्रुटियो को सुधारने का अवसर देते है। इस मेरे साथी को भी अवसर दीजिये ताकि यह दुर्व्यवहार का त्याग करके सन्मार्ग पर चल सके।

राजा ने शर्मा जी के तोते के वचन सुनकर वेश्या के तोते को दिया गया मार डालने का आदेश वापिस ले लिया और उसे दण्ड से मुक्त कर दिया।

गुण और अवगुण सगति का फल है। अत सत्सगति करे ताकि गुणो का उदय हो, जगत मे सदा सम्मान मिले और गति सुधरे।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृष्ठ ३–४]

卐

एक लोक है विरत आत्म का चेतन जो है– शाश्वत है
उसी लोक को ज्ञानी केवल लखता विकसित भास्वत है।
चिन्मय मम है लोक किन्तु यह पर है पर से डर कैसा,
निशक मुनि अनुभवता तब बस स्वय ज्ञान बनकर ऐसा।१५५।।

(आचार्य विद्या सागर महाराज द्वारा अनूदित
समयसार कलश का पद्यानुवाद *'निजामृत पान'* से)

अवसरोचित बात

बात करना भी एक कला है। कब, क्या, किससे कहना है, यह जो जानता है, वह विफल नहीं होता। समय पर न बोलना या अधिक बोलना दोनो ही बाते ठीक नहीं है।

महाभारत मे एक कथानक आता है कौरव और पाण्डवो का। दोनो के बीच परस्पर मे युद्ध हो रहा था। गुरु द्रोणाचार्य कौरवो की ओर से युद्ध कर रहे थे। वाण–विद्या के अधिनायक वे पाण्डवो की सेना का विध्वस किये जा रहे थे।

पाण्डव सेना के नायक श्रीकृष्ण ने पाण्डव–सेना का विध्वस देखकर मन मे विचार किया कि यदि यह युद्ध कुछ समय तक चलता रहा तो निश्चित ही पाण्डवो की सेना का विनाश हो जावेगा और पाण्डवो की पराजय हो जावेगी।

इसी बीच श्रीकृष्ण को किसी ने आकर सूचना दी कि हाथी मारा गया। श्रीकृष्ण तत्काल धर्मराज युधिष्ठिर के पास गये और पूछने लगे कि राजन् कौन मारा गया? युधिष्ठिर ने उत्तर देते हुए कहा–"अश्वत्थामाहतो हस्ती"। युधिष्ठिर इस वाक्य मे अश्वत्थामा हतो ही बोल पाये थे कि श्रीकृष्ण ने पाचजन्य शख बजा दिया।

लोगो ने 'अश्वत्थामा हतो सुनकर अनुमान लगाया कि द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा मारा गया है। चूकि वह भी एक मुख्य योद्धा था, अत पाण्डवो की सेना यह सूचना पाकर उत्साहित हुई और कौरवो की सेना अनुत्साहित। पाण्डव–सेना मे सैनिक अब दूने उत्साह से युद्ध मे डट गये। कौरवो की सेना मे शोक छा गया। पुत्र शोक से द्रोणाचार्य का भुजबल भी ढीला पड गया। पाण्डवो की विजय हुई।

यह है समय के अनुकूल बात करने का ढग। श्रीकृष्ण इन सब विधाओ मे कुशल और नीतिज्ञ थे। हस्ती शब्द शख बजाकर कृष्ण ने किसी को सुनने ही नही दिया और लोगो का ध्यान द्रोणाचार्य के पुत्र की ओर आकृष्ट करके अपना काम बना लिया। इस प्रकार अवसरोचित बात कभी निस्फल नही होती सफल ही होती है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शक पृ० ४–५]

वाणी-संयम-लाभप्रद

पॉच इन्द्रियो मे रसना इन्द्रिय भी एक है। इसके दो कार्य हैं– रसास्वादन करना तथा विचारो की वर्णों या शब्दो के रूप मे अभिव्यक्ति। बोल बोलने का काम रसना ही किया करती है। यह रसना जब आवश्यकता से अधि ाक बोलती है तब देह को सकट मे डाल देती है। कम से कम अनावश्यक बोल बोलने मे इस पर नियत्रण रहे। वाणी–सयम आवश्यक है। कहा जाता है–

एक जलाशय मे दो हस रहते थे। उनमे परस्पर मे मित्रता थी। वे सदा साथ–साथ विहरते थे। उसी जलाशय मे एक कछुआ भी रहता था। नित्य मिलने जुलने से वे दोनो हस भी उसे चाहने लगे थे। अब तीनो मे मैत्री हो गयी थी।

एक दिन ज्येष्ठ मास की तेज धूप मे सूखते हुए उस जलाशय को देखकर वे दोनो हस अन्यत्र जाने का विचार करने लगे। उनके इस विचार को सुनकर कछुआ निवेदन करता है मित्रो! आप दोनो तो आकाशगामी हो। आकाशमार्ग से उड़कर चले जाओगे। मै तो आकाशमार्ग से उड नहीं सकता। आप दोनो के जाने के बाद मेरी तो दुर्दशा हो जावेगी।

हस विचारते हैं कि कछुआ भी अपना मित्र है। मित्र को सकट मे छोडकर जाना मैत्री नहीं। कोई उपाय सोचे और इसे भी यहाँ से साथ ले चले। कुछ देर बाद एक हस ने दूसरे हस से कहा– मित्र! एक उपाय समझ मे आता है। हम एक लकडी लावे। लकडी के दो हिस्सो मे एक हिस्से को आप और एक हिस्से को मै चोच से पकड लूॅ। बीच मे लकडी को अपने मुॅह से कच्छप भाई पकड ले और हम दोनो आकाशमार्ग से चल दे।

इस उपाय पर तीनो ने परामर्श किया और तीनो आकाशमार्ग से चल दिये। चलते–चलते वे तीनो एक गॉव के ऊपर से निकले। गॉव के लोगो ने इन्हे देखा। वे अचम्भे मे पड गये। कछुये को इस प्रकार आकाशमार्ग से जाते हुए उन्होने कभी नही देखा था। वे शोर करने लगे। गॉव के लोगो का शोर सुनकर कछुये से न रहा गया। वह वाणी पर सयम न रख सका और बोलने को जैसे ही उसने मुॅह खोला कि धडाम से धरा पर गिर पडा और ग्रामीणो द्वारा पकड लिया गया तथा बडे कष्ट से मारा गया।

अत वाणी–सयम पर ध्यान दे, साथ ही मन पर भी नियमत्रण रखे। उसकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति को रोके। स्वाध्याय इन संयमो का सहज साधन है। साधु–सगति भी सहायक रहती है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन , पृ० ५]

卐

बाल्य काल मे जो कुछ बीता उस की स्मृति अब उचित नहीं।
धन सचय करता तब विधि ने किया तुझे क्या दुखित नहीं।।
अन्त समय तो दात तोडकर इस ने तब उपहास किया।
फिर भी तू दुर्मति विधिवश हो विधि पर ही विश्वास किया।।

श्रेष्ठ धर्म के बल पर नरपति महावश मे जनन धरे।
सुधी धनी हो जिन्हे निर्धनी धनार्थ सविनय नमन करे।।
यह पथ शम मय जिस पर चलना विषयी का वह कार्य नहीं।
धर्म कथ्य नहि महाजनो को जिसे लखे जिन आर्य सही।।

जीव दया मय इन्दिय दम मय सग त्यागमय पथ चलना।।
मन से तन से और वचन से पूर्ण यत्न से तज छलना।।
जिस पर चलने से निश्चित ही मिले मुक्ति की मजिल है।
निर्विकल्प है अकथनीय है अनुपम शिवसुख प्राजल है।।

(आचार्य विद्या सागर द्वारा रचित "गुणोदय" से)

वैरागी का व्याह

वैराग का अर्थ है ससार से उदासीनता। उदासीन भोगो मे आसीन नहीं होता और ब्याह है भोगो का योग। इस प्रकार वैराग ओर ब्याह दोनो छत्तीस के अक दिखाई देते है। इससे यह कथन असत्य प्रतीत होता है किन्तु है सोलह आने सत्य।

घटना बहुत पुरानी है। आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। भगवान महावीर के अनेक शिष्यो मे एक शिष्य का नाम सुधर्माचार्य था। वे विहार करते हुए देश देशान्तर के लोगो को उपदेशामृत का पान कराकर कल्याण–मार्ग प्रशस्त करते थे।

एक समय वे विहार करते हुए राजगृह नगर आये। वे यहाॅ नगर के बाहर एक उपवन मे ठहर गये। राजगृह के लोग दर्शनार्थ उनके पास आये। राजगृह नगर मे एक साहूकार रहता था। उसके पुत्र का नाम जम्बूकमार था। सुधर्म स्वामी के दर्शनार्थ जम्बूकुमार भी गया।

उसने वहाँ आचार्य सुधर्म का भली प्रकार उपदेश सुना। उपदेश का सार था– "क्षणभगुर विषयो मे फसकर यह नर तन यो ही नहीं खो देना है इसे पारमार्थिक कार्य मे लगाना ही उत्तम कार्य है"। यह वैभव एक न एक दिन छोडना ही पडेगा। यदि नहीं छोडा जाएगा तो वह स्वय हमे छोड देगा। इन दोनो क्रियाओ मे अन्तर है। स्वय छोड़ने मे शान्ति प्राप्त होती है और छूट जाने मे अशान्ति। छोड देने मे राग छूट जाता है और छूट जाने मे राग बना रहता है। जैसे शौच निवृत्ति से चित्त प्रसन्न होता है क्योकि शौच निवृत्ति स्वेच्छा से की जाती है और उल्टी होने मे जी मचलाता है, चित्त मे प्रसन्नता नही रहती क्योकि यह काम स्वेच्छा से नही होता। जैसा इन दोनो क्रियाओ मे अन्तर दिखाई देता है, ऐसे ही भोगो के स्वेच्छा से छोडने और परवशता–वश उनके छूट जाने मे है।

कीचड मे पैर डालकर धोने की अपेक्षा कीचड मे पैर न डालना ही अच्छा है। ऐसा सोचकर जम्बूकुमार सुधर्माचार्य के चरणो मे रहने की आज्ञा लेने माता–पिता के पास गये। पिता के यह पूछने पर कि अब तक कहाँ रहे? जम्बूकुमार ने कहा–पिताजी! मै सुधर्म साधु के यहाॅ उपदेश सुनता रहा और अब सदा वहीं रहना चाहता हूॅ, आज्ञा दीजिये।

बेटा क्या कह रहे? ऐसा नहीं सोचो। माता–पिता ने सोचा इसका विवाह कर देना चाहिए। इसके बाद तो वह स्वय अपनी बात भूल जावेगा। माता–पिता ने कहा–बेटा! हम तो तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं। विवाह कर लो।

जम्बूकुमार ने मन मे विचारा कि इस देह पर माता–पिता का अधिकार है। इस छोटी सी बात के लिए उन्हे अप्रसन्न करना ठीक नहीं। वैराग का अर्थ किसी को नाराज करना या नाराज होना नहीं है। वह तो स्वय आत्मा वत् परमात्मा को समझता है। उसने स्वीकृति देते हुए कहा पिताजी! विवाह के बाद मै घर नहीं रहूँगा, दूसरे ही दिन श्री गुरु के चरणो मे चला जाऊँगा। जिन आठ लड़कियो के साथ विवाह होना निश्चित हुआ था उन आठो को भी जम्बूकुमार का निश्चय बता दिया गया।

उन आठो लडकियो ने भी निश्चय कर लिया था कि या तो हम जम्बूकुमार को अपनी ओर आकृष्ट कर लेगी अन्यथा हम भी उन्हीं के मार्ग का अनुशरण कर लेगी। इस विश्वास के साथ उन्होने भी कहा– बिना किसी सोच विचार के उनका विवाह जम्बूकुमार के साथ कर दिया जाए, और विवाह कर दिया गया। कहा जाता है कि विवाह मे जम्बूकुमार को ९९ करोड का दहेज मिला था किन्तु जम्बूकुमार के हृदय मे तो वैराग्य समाया था। उसे वह दहेज तृण वत् निस्सार प्रतीत हुआ।

रात हुई। जम्बूकुमार ने रगमहल मे प्रवेश किया। आठो रानियॉ वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर उनके सामने खड़ी थी।। वे जम्बूकुमार पर अपना रग चढाना चाहती थी। प्रत्येक ने एक–एक कहानी कहकर उन्हे लुभाने का यत्न किया और जम्बूकुमार ने प्रत्येक रानी की कहानी का उत्तर कहानी मे देकर रानियो को निरुत्तर कर दिया। जम्बूकुमार का हृदय तो वैराग्य रूपी काली कमरी था जिस पर कि दूसरा रग नही चढता। वैराग्य की विजय और राग की पराजय हुई।

इसी अन्तराल मे एक घटना और घटी। जम्बूकुमार को विवाह मे मिले दहेज को चुराने के लिए एक प्रभव नाम के प्रसिद्ध चोर ने जम्बूकुमार के महल मे प्रवेश किया। यह चोर घर के लोगो को कृत्रिम नींद मे सुलाकर चोरी किया करता था। यहॉ जैसे ही चोरी करके जाने लगा कि उसके पैर चिपक गये। वह आगे न बढ सका। उसे आश्चर्य हुआ इस घटना पर। उसने इधर–उधर देखा। बगल के कमरे मे उसे जम्बूकुमार और उसकी रानियॉ बात करते हुए सुनाई दी। प्रभव चोर ने जम्बूकुमार के महल मे प्रवेश किया। जम्बूकुमार ने उसे देखकर कहा–अरे प्रभव। तुम यहॉ कैसे?

प्रभव ने कहा– स्वामी! अपराध क्षमा करे। मै चोरी करने आया था। आज तक मैं कहीं असफल नहीं हुआ। आपके पास ऐसा कौन–सा मंत्र–बल है जिससे कि धन लेकर जाते हुए मेरे पैर चिपक गये।

जम्बूकुमार ने कहा–प्रभव! मुझे न तुम्हारे आने का पता है और न धन चुराने का। मैं तो श्री गुरु की सेवा का मत्र जप रहा था। प्रात होते ही निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण कर लूगा। आप सारी सम्पत्ति ले जाना। मैं तुम्हे स्वेच्छा से यह सम्पत्ति दे रहा हूँ।

प्रभव यह सुनकर बहुत प्रभावित हुआ। सोचने लगा एक यह पुरुष है जो प्राप्त सम्पत्ति को ठुकरा रहा है और एक पुरुष मै हूँ जो इसके पीछे दीवाना होकर घर–घर की चोरी करता फिर रहा हूँ। एक तो वह मुझे प्राप्त नहीं होती और यदि कठिनाई से प्राप्त भी हो गई तो फिर मेरे पास ठहरती नहीं है। मै भी क्यो ने निर्ग्रन्थ व्रत इनके साथ ही अगीकार कर अपना जीवन सफल करूँ।

इस प्रकार भोर होते ही अज्ञान का भोर हो गया। ज्ञान–किरणो ने अन्तर मे प्रवेश किया और जम्बूकुमार, उनकी आठो रानियॉ और प्रभव चोर सभी दीक्षित हो गये।

यह है वैरागी का व्याह। वैरागी वैराग मे ही रमता है। राग उसका बाल बाका नहीं कर पाता। व्याह आहे भरता है, वैरागी नही। इस घटना से शिक्षा मिलती है कि "जो विपत्ति से डरता है और सम्पत्ति चाहता है उससे सम्पत्ति स्वय दूर हो जाती है किन्तु जो सम्पत्ति की याद भी नही करता एव विपत्ति मे धैर्य धारण करता है सम्पत्ति उसके चरण चूमती है"।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ७–१०]

卐

हमारा जीवन उच्चारण से नही, किन्तु उच्च आचरण से "शुद्ध बनेगा। इसलिए जिस का आचरण "शुद्ध है उस की आम्नाय (धर्म) "शुद्ध है। जिस का आचरण "शुद्ध नहीं, उस की आम्नाय भी "शुद्ध नही है।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज के प्रवचनो से)

दयावान् युवराज्ञी

सदाचार का नाम गुण है और अनाचार का नाम अवगुण। दया जहाँ होगी वहाँ अवगुण नहीं होगे।

एक समय की बात है। एक राजा था। उसके दो बेटे थे। उसके मरने पर बड़े राजकुमार को राजा और छोटे राजकुमार को युवराज बनाया गया।

युवराज की पत्नी युवराज्ञी गुणो की अवतार थी। दु:खी जीवो पर उसके मन मे करुणा–भाव रहता था। जैसे वह अन्तर से निर्मल थी वैसे ही बाहर से उसकी देह रूप की राशि थी। उसके देह–सौन्दर्य पर राजा (युवराज्ञी का जेठ) की नजरे लगी हुई थी। युवराज उसके मार्ग मे बाधक था।

एक दिन उसने युवराज को किसी शत्रु पर आक्रमण करने भेज दिया और दूती को भेजकर युवराज्ञी को स्वय मे आकृष्ट करने का यत्न किया किन्तु सफलता हाथ न लगी। राजा ने सोचा इसे युवराज पर भरोसा है। यदि युवराज को मार डाला जाय तो विवश होकर युवराज्ञी स्वय मेरी आज्ञा मानेगी।

राजा ने षडयन्त्र रचा। राज्य मे वसन्तोत्सव मनाया। सभी अपनी–अपनी पत्नियो सहित वन विहार को गये। युवराज भी युवराज्ञी के साथ अपने बगीचे मे जाकर विश्राम करने लगा। उसने बगीचे के चारो ओर पहरेदार बैठा दिये।

राजा को पता चला। वह युवराज से मिलने बगीचे की ओर गया। वहाँ पहुँचकर वह जैसे ही युवराज के विश्राम स्थल की ओर गया कि पहरेदारो ने उसे रोक दिया।

युवराज्ञी को वस्तु स्थिति समझ मे आ गयी। उसने कहा प्रभो! आपके भाई साहब के विचार अनुकूल प्रतीत नही होते। उनसे सावधान रहिएगा। कोई भी धोखा सभव है। युवराज्ञी के सचेत करने पर भी युवराज ने लापरवाही की और राजा को आने देने के लिए पहरेदारो से कह दिया।

अनुमति पाकर राजा युवराज से मिला। उसने पानी पीना चाहा। युवराज जैसे ही पानी लेने के लिए जाने लगा राजा ने पीछे से प्रहार कर दिया। ग्रीवा मे कुठार लगते ही युवराज धराशायी हो गया और राजा वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।

पहरेदारो ने उसे पकडना चाहा किन्तु युवराज्ञी ने सोचा– स्वामी मरणासन्न है। राजा का पकडा जाना सुनकर ऐसा न हो कि उनका अन्त समय बिगड जाए। उसने पहरेदारो को रोका और स्वामी से कहा– स्वामी! इस घटना का निमित्त मै ही हूँ। राजा ने मेरे सौन्दर्य के कारण ही ऐसा किया है। अत शत्रु राजा नहीं, मै ही हूँ। यथार्थ मे सब अपने–अपने कर्मों के प्रेरे हुए है। किये हुए कर्मों का फल पा रहे है। जो आज शत्रु है कल मित्र और फिर शत्रु बनते दिखाई देते है। शरीर भी साथ नहीं देता। अत आत्मध्यान ही श्रेष्ठ है। भगवद् भजन ही अच्छा है। हे स्वामी! इनमे ही मन लगाइए और नश्वर शरीर को प्रसन्नता पूर्वक वैसे ही त्याग दीजिएगा जैसे सर्प काचली को त्याग देता है। युवराज्ञी अन्तिम सास तक युवराज को पच नमस्कार मत्र सुनाती रही और युवराज ने भी आत्मध्यान करते हुए नश्वर तन का त्याग किया तथा स्वर्ग मे देव हुआ।

उसने अवधिज्ञान से पूर्वभव का पूर्ण वृत्त जान लिया। वह युवराज के रूप मे नीचे आया और पानी का गिलास लेकर अपने भाई के पास गया। उसने कहा– लीजिये, पानी पीजिये। बिना पानी पिये क्यो लौट आये।

आपने जिस मार्ग को अपनाया है वह सन्मार्ग नही, कुमार्ग है। तुम्हारी प्यास बुझानेवाला नीर उस मार्ग मे नही है। प्यास कैसे बुझेगी। आपने कटार मार कर मुझे मार डाला था किन्तु उस सती युवराज्ञी के मत्र से वह आघात भी ठीक हो गया। वह महासती है। काम–वासना वश उसे बुरी दृष्टि से मत देखो। उसके चरण स्पर्श करो और क्षमा–याचना करो तथा अर्हन्त का स्मरण करो इसी मे तुम्हारा कल्याण है। वह राजा भी अपनी करनी पर पछताया और सन्मार्गी बन गया।

युवराज्ञी दयावान् थी। दया गुण होने से उसमे बदले की भावना उत्पन्न नही हुई। पर को दोषी न मान स्वय को दोषी माना। सदुपदेश से पति को सन्मार्ग से लगाया। दया धर्म का मूल है। इसीसे दूर होते है समस्त शूल। दया के अभाव मे दु ख ही दु ख होते है और अवगुण जन्मते है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० २०–२२]

卐

आज का मानव भोग से योग पाना चाहता है किन्तु योग का परम आनन्द भोगो को तिलाजलि देने पर ही आ सकेगा।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज के प्रवचनो से)

खाओ सब मिल बांट कर

ससार मे जो भी महान् आत्माएँ हुई है वे खुदगर्जी नहीं रहीं। उन्होने अपने समान ही पर को भी माना है और अपने समान ही पर को भी कल्याणमार्ग से लगाया है। जो खुदगर्जी हुए हैं उनका विनाश ही हुआ है।

एक समय की बात है। एक साधु विहार करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रहा था। राह मे उसे चार बटोही मिले। साधु ने कहा–हे भाइयो! इस राह से आगे मत जाना। आगे थोडी ही दूर पर मौत विद्यमान है।

साधु कहकर आगे बढ गया। बटोहियो ने साधु की बात पर गौर नही किया। अपनी धुन मे वे मस्त रहे और बतयाते आगे बढ गये। उन्हे राह मे एक अशर्फियो का ढेर दिखाई दिया। बटोही प्रसन्न हुए और उन्होने अशर्फियाँ उठा लीं। इसके पश्चात् फिर बतयाते हुए वे राह चलने लगे। किसी एक ने कहा–भाई! साधु ने कहा था इस मार्ग मे मौत है। कही ये अशर्फियाँ ही तो मौत नही हैं। इसकी बात सुनकर दूसरे बटोही ने कहा–नहीं भाई! ऐसा नही है। अशर्फियाँ कही मौत होती है। यदि ऐसा होता तो राजा–महाराजा इन्हे अपने खजाने मे क्यो रखते? तीसरे बटोही ने कहा–जिस राही की ये अशर्फियाँ होगी वह इनके बिना बहुत दुखी होगा। चौथे बटोही ने कहा–आपका कहना सही है किन्तु इनके स्वामी का कैसे पता लगाया जाय? अत इनसे हम लोग अपना ही दुख दूर करेगे।

बटोही राह चलते–चलते थक गये थे। उन्हे भूख और प्यास सताने लगी। उनहे एक गाव मिला। वे चारो वहा रुक गये। उन्होने मिलकर निर्णय किया कि हम मे से कोई एक बटोही एक अशर्फी की मिठाई लाये जिसे खाकर हम लोग पानी पी ले। इस प्रकार एक अशर्फी एक बटोही को दी गयी और उसे मिठाई लेने भेजा गया।

वह सोचता है कि पहले मिठाई मै खा लूँ और शेष मीठे मे विष मिला दूँ जिससे कि इस मिठाई को खाकर तीनो साथी मर जायेगे और सभी अशर्फियाँ मुझे मिल जायेगी। इधर भी लोभ बढा। तीनो ने सोचा उसके आते हम तीनो मिलकर उसे मार डालेगे जिससे कि अशफियो का उसका हिस्सा भी हम तीनो को ही प्राप्त हो जावेगा। अपने–अपने निश्चय पर चारो दृढ रहे। पहला बटोही

जैसे ही मीठा लेकर आया कि तीनो ने मिलकर उसे ऐसा मारा कि उसके तत्काल प्राण निकल गये। पश्चात् आनन्द से तीनो ने मीठा खाया और कुछ समय बाद ये तीनों भी मर गये। अशर्फियाँ वहीं पड़ी रह गयीं। सन्तोष पूर्वक बटवारा कर लेते तो उनका मरण नहीं होता। अत मिल बाट कर खाना उत्तम कहा गया है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० २८]

卐

है जीव मे विकृत रागमयी दशाये
तो कर्मरुप ढ़लती विधि वर्गणाये।
मोहादि का उदय पा कर जीव होता
रागादिमान फलत निज होश खोता।।

(समयसार ८६)

कर्त्ता न जीव यह हो विधि के गुणो का,
कर्त्ता कभी न विधि चेतन के गुणो का।
तो भी परस्पर निमित्त नहीं बनेगे
तो "राग भाव" विधिभाव न जन्म लेगे।

(समयसार ८७)

आत्मा स्वय हृदय मे कुछ भाव लाता
कर्त्ता उसी समय वो उसका कहाता।
हो ज्ञान भाव मुनि मे अपरिग्रही मे
अज्ञान भाव जु गृहस्थ परिग्रही मे।।

(समयसार ३४)

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा अनूदित समयसार का पद्यानुवाद "कुन्दकुन्द का कुन्दन" से)

नहीं व्यर्थ कोई वस्तु है

हर वस्तु मे कोई न कोई गुण अवश्य होता है। उसकी उपयोगिता समय पर ही ज्ञात होती है और समय पर ही ज्ञात होता है उसका गुण। किसी भी वस्तु को व्यर्थ न जाने।

एक समय की बात है। एक राजा था। उसकी एक सुन्दर विज्ञ रानी थी। दोनो महल मे सुकोमल शैया पर लेटे हुए थे। राजा की दृष्टि महल के छत की ओर गयी। उन्होने देखा एक मकडा महल की छत मे जाला तान रहा है। राजा को लगा कि हमारा इतना सुन्दर महल जिसे यह मकड़ा खराब कर रहा है। छत गन्दी करने को इसे किसने कहा? राजा को क्रोध आया। उन्होने उसे मारने के लिए तमचा उठाया कि इतने मे रानी का ध्यान उस ओर गया तथा रानी ने राजा का हाथ पकडकर मकडे को मारने से रोक लिया। रानी ने कहा– राजन्! आप मकडे के जाले को बेकार समझ रहे हैं, यह ठीक नही। सभी वस्तुएँ अपनी जगह समय पर काम आने वाली है, कोई भी वस्तु बेकार नही है। इस बात का अनुभव समय पर हो जायेगा।

राजा शान्त हो गया और समय की प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन मत्री के साथ राजा घूमने निकला। दोनो बातचीत मे मस्त थे। इतने मे पीछे से एक कुत्ता आया और उसने राजा को पैर मे काट खाया। दोनो लौट कर महल मे आ गये। सेवक चिन्तित हुए और नगर के वैद्यो को बुला लाये। वैद्यो से पूछा गया कि कुत्ते के काटे का क्या इलाज करना चाहिए? वैद्यो ने परामर्श किया और कहा– जहाँ कुत्ते ने काटा है उस घाव मे मकडी का जाला भर दिया जाये तो कुछ नहीं होगा और घाव भर जावेगा। सेवक मकडी का जाला खोज लाये और वह कुत्ते के काटे घाव मे भर दिया गया। राजा स्वस्थ हो गये।

मकडी के जाले का यह चमत्कार देखकर राजा को रानी की बात पर प्रतीति हुई। उस दिन से वे रानी का बहुत आदर करने लगे।

निस्सन्देह अपनी–अपनी जगह सभी का महत्त्व है। किसी को छोटा, निर्मूल्य समझकर उसका निरादर न करे। समय पर सभी काम आते है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ३०–३१]

मदनसुन्दरी की पति-सेवा

एक समय की बात है। इस पृथिवी पर एक पुष्पपाल नामक राजा राज्य करते थे। उनकी एक पुत्री थी जिसका नाम मदनसुन्दरी था। इसकी शिक्षा एक आर्यिका के पास हुई थी। आर्यिका ने इसे आत्मविद्या की अच्छी शिक्षा दी थी।

बडी होकर विवाह के योग्य होने पर एक दिन राजा ने पूछा बेटी! कहो तुम्हारा विवाह कहाँ किस कुमार के साथ किया जावे? पिता का यह प्रश्न सुनकर बडी विनम्रता से उसने कहा पिताजी! आप जैसा उचित समझे, किजिएगा। आप जिसे अर्पण कर देगे, मेरे लिए वही प्राणो से भी अधिक प्यारा होगा। उसी की सेवा करके अपने को धन्य समझूगी।

बेटी के इस उत्तर से राजा को अच्छा नहीं लगा। उसने श्रीपाल नाम के एक कुष्ट रोगी के साथ कन्या का विवाह करने का निश्चय किया। राजा के इस निश्चय से मत्री आदि सभी को दु ख हुआ। उन्होने राजा से मदनसुदरी के विवाह सबधी निश्चय मे परिवर्तन करने के लिए निवेदन भी किया किन्तु राजा अपने निश्चय पर अडिग रहा और उसने उस कुष्ट रोगी के साथ मदनसुन्दरी को विवाह दिया।

मन्त्रियो को दु खी देखकर मदनसुन्दरी ने उनसे कहा यह आदर्श कार्य हुआ है। पिताजी ने बहुत अच्छा कार्य किया है। उनके इस निर्णय से मै प्रसन्न हूँ। कम से कम मुझे एक रोगी की सेवा करने का अवसर तो प्राप्त हुआ। मेरे पति देव बहुत अच्छे है। केवल देह मे कुष्ट रोग है जो कुछ समय बाद ठीक हो जावेगा।

शरीर तो हमारा, आपका और हमारे पतिदेव का समान ही है। कौन सा रोग कब किसे हो जाये कहा नही जा सकता। यदि विवाहोपरान्त यही रोग पति को होता तो फिर क्या हम पिताजी को दोषी बताते। निश्चित है कि वे निर्दोषी कहे जाते। अत हे मन्त्रियो! आप सब दु खी न हो। इसमे पिताजी का कोई दोष नहीं है। दोष तो मेरे कृत कर्मों का है। उनका फल अब उदय मे आया है जिसे मुझे सहर्ष भोगना है और प्रयत्न करना है कि नये कर्मों का बन्ध न हो। कहते है मदनसुन्दरी की सेवा से श्रीपाल का कुष्ट रोग दूर हो गया और मदनसुन्दरी सुखी हो गयी थी। उसने पति–सेवा को ही अपना ध र्म माना था। उसे सफलता मिली निर्मल भावना के साथ पति–सेवा करने से, धार्मिक विचारो से।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ३१–३२]

बुरा जो चेते और का खुद का पहले होय

सभी जानते है कि जो दूसरो का बुरा विचारते हैं उनका पहले बुरा होता है। दूसरे का बुरा हो या न हो कहा नहीं जा सकता। इस ससार मे यह देखा गया है कि जो दूसरो को गिराने के लिये गढ्ढा खोदता है, वह स्वय गढ्ढे मे गिरता है।

एक समय की बात है। एक राजमत्री था। वह एक समय घूमने निकला। नगर के बाहर उसे बहुत बालक खेलते हुए दिखाई दिये। वह उन लडको का खेल देखने लगा। उन लडको मे उसे एक लडका बहुत चतुर समझ मे आया। उसने उसे अपने पास रहने को राजी कर लिया। अब वह बालक राजमत्री के घर रहता और उनके काम काज मे पूर्ण सहयोग करता था।

एक दिन राजा ने उस राजमत्री से पूछा मत्री! बताओ यह दुनियाँ किस रग की है? और मेरा इसके साथ कब तक, कैसा और क्या सबध है? राजा के प्रश्न को सुनकर राजमत्री घबरा गया। उसे कोई सटीक उत्तर समझ मे नहीं आया। वह बुद्धिमान बालक भी वही था उसने भी राजा के प्रश्न को सुन लिया था। वह एकाएक वहाँ से दौडा और झट पचरगे फूलो का एक गुलदस्ता लाकर उसने राजा के आगे रख दिया और राजा का ताज अपने सिर पर रख लिया। बालक के कौतूहल को देखकर सभी सभाषद् हॅसने लगे।

राजा बालक ने सभाषदो से कहा देखो इस गुलदस्ते मे पॉच रग के फूल है। जैसे इसका निर्माण पॉच रगवाले फूलो से हुआ है वैसे ही इस दुनिया का पच परावर्तन रूप पचरगो से हुआ है। यह ताज कब तक मेरे सिर पर रहेगा इसका कोई भरोसा नहीं है। राज्य भी तभी तक है जब तक कि सिर पर ताज है।

बालक राजा की यह व्याख्या सुनकर मत्री आवाक रह गये। राजा बालक पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उसे मत्री का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। इस घोषणा से मत्री के हृदय को गहरी चोट लगी। उसने सोचा मेरा औरस पुत्र क्या करेगा? उसका जीवन–निर्वाह कैसे होगा? उसने सोचा "न रहेगा बॉस और न बजेगी बॉसुरी"। उस बुद्धिमान बालक को ही क्यो न मार डाला जाय। उसने योजना बनाई। जब अच्छे दिन होते है तो कोई योजना काम नहीं करती, सब विफल हो जाती है। कहा भी जाता है कि–

जाको राखे साइयाँ मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय।।

उस राजमत्री ने भडभूँजे से कहा– अभी एक लडके को चने भुजाने भेज रहा हूँ। उस लड़के को भाड मे झोक देना। मत्री का यह आदेश सुनकर वह भडभूजा घबरा गया। काटो तो खून नहीं। पर करे तो करे क्या? विवश था वह कार्य करने को।

इधर राजमत्री ने उस चतुर बालक को बुलाया और चने भुनाकर लाने के लिए कहा। बालक बडा आज्ञाकारी था। वह चने लेकर भुनाने चला गया। रास्ते मे मत्री का उसे औरस पुत्र मिल गया। वह गेंद खेल रहा था। उसने इससे कहा– भैया! कहाँ जा रहे हो। उसने कहा – चने भुनाने। मत्री–पुत्र ने कहा भैया तुम मेरी जगह गेद खेलो मै चने भुना कर लाता हूँ और वह उसके हाथ से चने छीनकर भुनाने दौड गया। यह सच है– जिसका उदय अनुकूल होता है तब निमित्त भी वैसे ही अनुकूल प्राप्त हो जाते है।

भडभूजे के पास जैसे ही चने लेकर वह मत्री–पुत्र पहुँचा कि भडभूजे ने मत्री के कहे अनुसार उसका काम तमाम कर दिया। उसे भाड मे झोक दिया।

खेल समाप्त हाने पर जब वह चतुर बालक घर पहुँचा तब वह राजमत्री उसे देखकर आश्चर्य मे पड गया। मन मे सोचने लगा इसे तो मैने भडभूजे के पास भेजा था। वहाँ से बचकर कैसे आ गया? उसने उस चतुर बालक से कहा– चने भुना लाये, लाओ कहाँ हैं? उसने कहा– महाशय मै चने भुनाने जा रहा था। इतने मे भैया मिल गया। उसने कहा गेद खेलो मै चने भुना कर लाता हूँ और मुझसे चने की थैली छीनकर भुनाने भाग गया। मै गेद खेलने लगा। क्या भैया चने भुनाकर नहीं लाया?

मत्री उस पराये लडके से ऐसा सुनकर बहुत दु खी हुआ। भागा–भागा भडभूजे के पास गया किन्तु हाथ कुछ नही आया। अपने प्राण प्यारे इकलौते पुत्र को ईर्षा–वश खो बैठा। अपनी करनी पर पछताता रह गया। इसीलिये कहा जाता है कि जो दूसरे का बुरा सोचता है उसका पहले बुरा होता है। जो जैसा करता है वैसा ही भरता है। अत कभी बुरा मत सोचो। सबके हित का चिन्तन करो इसी मे सार है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ३३–३५]

भावों का है खेल जगत में

डाक्टर, ड्राइवर, डकैत तीनो से मनुष्यो का घात होता है। समाज ड्राइवर और डकैत को हत्यारा भी कहती सुनी जाती है किन्तु डाक्टर को किसी को भी हत्यारा कहते नहीं सुना जाता। इसका कारण है विचारो की भिन्नता और प्रमाद। डाक्टर के द्वारा भी मनुष्यो का घात होता है किन्तु उसके विचार सदैव बचाने के रहते है, मारने के नही जबकि डकैत के विचार मारने के ही होते है बचाने के नहीं। यही कारण है डाक्टर को निर्दोष और डकैत को दोषी माना जाता है। पुराणो मे इस सदर्भ मे एक कथा आती है–

एक समय की बात है। स्वयभूरमण समुद्र मे एक राघव नाम का मच्छ था। वह दीर्घकाय था। जब तक भूख रहती वह मछलियाँ खाता रहता था किन्तु भूख शान्त होने पर मछलियॉ उसके मुँह मे आती जाती रहतीं वह उनको नहीं सताता था।

इस राघव मच्छ की ऑख पर एक तन्दुल नामक मच्छ भी रहता था। उसने बेरोक राघव मच्छ के मुख मे मछलियो को आते जाते देखा। वह सोचता है– राघव बडा मूर्ख है जो सहज प्राप्त भोजन को छोड रहा है। इसके स्थान पर यदि मै होता तो इन मछलियो को कभी जीवित न छोडता उन्हे निगल ही जाता।

देखो शरीर छोटा सा है। थोडे से भोजन मे जिसका पेट भर जाता है वह कितना दुर्भाव रखता है। उसने न मछलियॉ पकडी है और न ही उनका घात किया है किन्तु केवल उनके घात सम्बन्धी विचार करने से वह मरकर कहते है नरक मे उत्पन्न हुआ।

यह सच है। मनुष्य जैसा भी अच्छा या बुरा विचार करता है वह वैसा ही फल पाता है। किसान से बहुत जीवघात होता है किन्तु उसके भाव जीवघात के नही रहते। उसका विचार तो अनाज उत्पन्न करने का होता है। शिकारी दिन भर जगल मे घूमता है। उसे शिकार नहीं मिलता। वह किसी जीव का घात नही करता फिर भी उसे विचारो के कारण जीवघाती कहा जाता है और वह दु ख पाता है।

अत तन्दुल मच्छ मत बनो। हितैषी भाव रखो जीवन की इसी में सार्थकता है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ३७]

काम कराने की कला

एक समय की बात है। एक नगर मे एक सेठ रहता था। उसके पॉच लड़के और एक लडकी थी। पाँचो लडको के उसने विवाह भी कर लिये थे। छोटी बहू अभी घर नही आई थी। वह अपने माता-पिता के यहा ही रह रही थी।

परिजन अशिक्षत थे। उनमे ईर्षा भाव था। परस्पर में उनमे तनाव रहता था। हर सदस्य विचारता था कि उसे कम काम करना पडे, आराम अधिक मिले।

छोटी बहू अच्छे घर की बेटी थी। सुशिक्षित थी। जब वह ससुराल आई तो उसने कलह करते परिजनो को देखा। उसका मन प्रथम तो खेद खिन्नित हुआ किन्तु कुछ समय बाद उसने सोचा कि उसे अशिक्षा से लडना है। परिजनो मे प्रेम भाव जगाना है।

उसने देखा झगडे की जड है घर का काम-काज। उसने सोचा इसे यदि मै करने लगूँ तो गृह-कलह समाप्त ही हो जावेगा। काम करने से उसे लाभ ही तो होगा-शरीर चुस्त और निरोग रहेगा। पाचनशक्ति बढेगी। उसने सास एव सभी जिठानियो से कहा- मै सबसे छोटी हूँ। जो छोटा होता है उसका कर्त्तव्य है बडो की सेवा करना। अत कल से रसोई का काम मै करूँगी। जिठानी ने कहा- कॅवराणी जी! अभी तो तुम्हारे खाने-पीने के दिन है, विनोद करने के दिन है। इस झझट मे मत पडो।

छोटी बहू ने कहा- मुझे काम करने मे आनन्द आता है। अत मुझे काम करने दीजिये और दया करके आप लोग मुझसे काम लीजिये। इस प्रकार कहकर वह प्रतिदिन रसोई तैयार करने लगी। सरस स्वादिष्ट भोजन तैयार करके पहले वह सब को जिमाती और बाद मे स्वय जीमती थी। अभ्यागतो का भी यथोचित सम्मान करती थी।

एक दिन सास ने कहा- बहू सारा कार्य तू अकेले ही क्यो करती है? उसने कहा- सास जी! काम से कोई दुबला नहीं होता, बल्कि शरीर स्वस्थ रहता है। अपने घर का कार्य करने मे मुझे लाज नहीं आती। मानवता तो यह है कि हम पडौसी की भी सहायता करे। इस शरीर का होना ही क्या है? एक दिन मिट्टी मे मिल जावेगा। काम मे हाथ बटाना मानवता है।

सास-बहू की ये बाते अन्य जेठानियाँ भी सुन रही थीं। उन्हें अपनी भूल समझ मे आई। उन्हे लगा कि पड़ोसी के कार्य में हाथ बटाना तो दूर रहा हम अपने घर के कार्यों मे ही हाथ नहीं बटाते। घर का कार्य जैसा छोटी बहू का है ऐसा ही हम सबका भी है। सभी मिलकर क्यो न करे और फिर सभी मिलकर कार्य करने लगीं। आपस मे सबमे प्रेम हो गया। सार यह है स्वय काम करके ही दूसरो से काम कराया जा सकता है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ४३-४५]

卐

योगी बने तप करे गुरु हो गुणो मे,
तो भी उन्हे नुति करे लघु जो गुणो मे।
मिथ्यात्व से सहित हो पथ भूल जाते,
चारित्र से स्खलित हो प्रतिकूल जाते।

(प्रवचनसार ३-६७)

चारित्र मे अधिक प्रोढ कषाय- जेता,
सिद्धान्त मे कुशल है जिन तत्ववेत्ता।
छोडे न किन्तु यदि लौकिक सगति को,
वे सत-सयत नही अब क्या गति हो?
गति दुर्गती हो।।

(प्रवचनसार ३-६८)

निर्ग्रन्थ हो नही जुडा निज-धर्म से है,
मन्त्रादि मे निरत जो तिष-कर्म मे है।
ले बाह्य-सयम, तपे तप ओ भले ही,
सो साधु लौकिक रहा भव मे भ्रमे ही।।

(प्रवचनसार ३-६९)

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा अनूदित प्रवचनसार का पद्यानुवाद "कुन्दकुन्द का कुन्दन" से)

साधु दृष्टि

जिन प्राणियो ने मन पाया है वे प्राणी कुछ न कुछ सोच विचार मे पडे ही रहते हैं। मन कभी शान्त नहीं बैठता। अच्छा और बुरा किसी एक विषय के चिन्तन मे वह लगा ही रहता है। जो गृहस्थ है उनके चिन्तन मे स्वार्थ रहता है और जो साधु है उनके चिन्तन मे परमार्थ।

एक समय की बात है। रावण अपने पुष्पक विमान मे बैठकर आकाशमार्ग से कही जा रहा था। धर्म की ऐसी मान्यता है कि जहाँ निर्ग्रन्थ मुनि ध्यानस्थ होते है उनके ऊपर से जाने पर गतिरोध हो जाता है। रावण का विमान जिस मार्ग से गतिशील था उस मार्ग मे कैलाश पर्वत पडता था। इस पर्वत पर चक्रवर्ती भरतेश ने बहुमूल्य जिनायतनो का निर्माण करा कर उनमे प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित कराई थी। इसी पर्वत पर योगीराज बाली ध्यानस्थ थे।

रावण का विमान जैसे ही कैलाश पर्वत पर आया कि उसकी गति अवरूद्ध हो गयी। उसे यह बोध नहीं था कि जहाँ निर्ग्रन्थ मुनि होते है वहाँ यान आगे नहीं बढता। विमान–गति अवरूद्ध हो जाती है। रावण ने समझा वैर वश किसी ने उसके विमान को रोका है। वह विमान की गति भग होने का कारण खोजने लगा। उसने पर्वत पर मुनिराज बाली को ध्यान करते हुए देखा। उसकी समझ मे आया कि इन्हीं मुनिराज ने हमारे विमान को रोका है। उसने क्रोध मे आकर कहा– अपने अपमान का मुनिराज से बदला अवश्य लूगा। अभी पर्वत सहित इन्हे समुद्र मे फेकता हूँ। पर्वत उठाने के लिए वह पर्वत के मूलभाग मे पहुँचा और पर्वत उठाने की चेष्ठा करने लगा।

रावण की इस क्रिया से बाली मुनिराज चिन्तित हुए। उन्हे चिन्ता अपने मरण की न थी। उन्हे चिन्ता थी पर्वत पर निर्मित जिनायतनो की। उन पशु–पक्षियो की जो वहा रहते थे। अनर्थ रोकने के लिए उन्होने पैर के अगूठे से किचित वहा के भू–भाग को दबा दिया। रावण की शक्ति निष्काम हो गयी। वह भू–भाग से दबकर रोने लगा।

मन्दोदरी ने रावण की दयनीय दशा देखकर मुनिराज से करवद्ध पति–भिक्षा की याचना की। मुनिराज बाली ने भी अपने दबाये हुए अगूठे को थोडा ढीला कर दिया। रावण को राहत मिली। वह नम्रीभूत होकर महाराज

श्री के चरणो में आया और उसने क्षमा याचना की। मुनिराज भी जिनायतनो की सुरक्षा से अतीव प्रसन्न हुए।

सच है निर्ग्रन्थ साधुओ की दृष्टि तन की ओर तनिक भी नहीं रहती। तन से तो वे तनके रहते हैं। यथार्थ मे यही दृष्टि साधु है। इसी में है कल्याण। साधु जन की दृष्टि जन--जन को आदरणीय है। स्वार्थ से परे यह दृष्टि आदरणीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ५१]

卐

आकाश सदृश विशाल, विशुद्ध सत्ता
योगी उसे निरखते वह बुद्धिमत्ता।
सत्य शिव परम सुन्दर भी वही है,
अन्यत्र छोड उस को सुख ही नही हैं।।१५।।

स्वाधीनता सरलता समता स्वभाव
तो दीनता कुटिता ममता विभाव।
जो भी विभाव धरता तजता स्वभाव,
तो डूबती उपल नाव, नहीं बचाव।।१६।।

मैं कौन हूँ, किधर से अब आ रहा हूँ,
जाना कहाँ, इधर से जब जा रहा हूँ।
ऐसा विचार यदि तू करता न प्राणी
कैसे तुझे फिर मिले वह मुक्तिरानी।।३४।।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा
रचित "निजानुभव शतक" से)

दृढ़ संकल्पी भील

घटना महाभारत मे प्रसिद्ध गुरु द्रोणाचार्य के समय की है। उस समय एक भील था जिसका नाम एकलव्य था। उसे वाणविद्या सीखनी थी। उस समय इस विद्या मे द्रोणाचार्य की विशेष ख्याति थी। एकलव्य उनके पास जाकर उनके चरणो मे बैठ गया। बडी ही नम्रता से उसने वाणविद्या सिखाने को उनसे निवेदन किया। द्रोणाचार्य ने कहा– एकलव्य! मैं लाचार हूँ। केवल क्षत्रियो को ही मै यह विद्या सिखाता हूँ।

एकलव्य ने कहा प्रभो! मेरा भी यह दृढ सकल्प है कि वाणविद्या आप ही से सीखूगा। उसने गुरु द्रोण की प्रतिमा का निर्माण किया और उस प्रतिमा के आगे वाणविद्या सीखना आरम्भ कर दिया। कुछ दिनो मे वह धनुर्धर अर्जुन से भी अधिक दक्ष हो गया।

एक दिन गुरु द्रोण उसके निकट आये और पूछने लगे वत्स! यह विद्या तुमने किससे सीखी है? एकलव्य ने कहा प्रभो आपसे ही। इसके पश्चात् द्रोणाचार्य ने कहा तुम्हे गुरु दक्षिणा देना चाहिए। एकलव्य ने कहा जो चाहे वह लिजिए। गुरू द्रोण ने उसके दाये हाथ का अगूठा मागा और एकलव्य ने भी तुरन्त अगूठा काट कर गुरु को अर्पण कर दिया। गुरु द्रोण ने कहा इस विद्या का प्रयोग हिसादि कार्य मे नहीं करना। एकलव्य ने कहा हिसा तो निम्न लोग करते हैं। मेरा जन्म निम्न कुल मे अवश्य हुआ है किन्तु जन्म लेने मात्र से काई नीच ऊँच नहीं हो जाता। जन्म तो सभी का समान पद्धति से होता है। नीचता और उच्चता तो विचारो और कर्त्तव्य से जानी जाती है।

एकलव्य के विचारो को जानकर गुरु द्रोण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने उसे आशीर्वाद दिया। इसके बाद वे कहने लगे एकलब्य! अब तुम वाण कैसे चलाओगे? उसने विनय पूर्वक कहा गुरुवर! आपका आशीर्वाद बना रहे। असभव कार्य भी सभव हो जावेगे। उसने पैर के अगूठे से वाण चलाकर दिखा दिया। गुरु द्रोणाचार्य एकलब्य के दृढ सकल्प पर बहुत प्रसन्न हुए।

दृढ सकल्प और अनुकूल पुरूषार्थ दोनो का चोली–दामन जैसा साथ है। यदि सकल्प के अनुरूप पुरूषार्थ किया गया तो सकल्प की निश्चित ही पूर्ति होती है। एकलव्य भील इसका ऐतिहासिक उदाहरण है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ५४–५५]

जैसी बनी, बना हो वैसा

विवाह, वित्त और रूप वैभव का योग कहा गया है। जोड़ी की किसी को चिन्ता नही, सभी को चिन्ता है तो तिजोडी की, जबकि चाहिये यह कि जिस प्रकृति की बच्ची हो उसी प्रकृति का वर देखा जावे।

एक समय की बात है। एक बहुत बडा बादशाह था। उसकी एक सुन्दर बेटी थी। वह सादा जीवन उच्चविचारोवाली थी। सन्तोषवृत्ति से रहती और जनता की सेवा करती थी। धीरे-धीरे वह विवाह योग्य हुई। अनेक राजकुमारो ने उसे विवाहने की इच्छा प्रकट की किन्तु बादशाह बेटी की प्रकृति के अनुकूल ही वर चाहता था।

एक दिन बादशाह महल के बाहर घूमने निकला। उसे नगर के बाहर एक कुटिया दिखाई दी। जहा कुटिया निर्मित थी उसके आसपास आम, अमरूद, अनार, नीबू, नारगी आदि के कुछ वृक्ष लगे हुए थे। बादशाह वहा गया। कुटिया मे एक युवक था। वह कुटिया से बाहर आया और बादशाह को उसने सलाम की। बादशाह ने पूछा यहा क्या करते हो। उसने उत्तर देते हुए कहा खेती करता हू। जो समय बचता है, उसे अभ्यागतो की सेवा मे लगाता हू। सेवा को मै परमधर्म मानता हू। उसने अपना अभ्यागत जानकर बादशाह का उनके अनुकूल स्वागत-सत्कार किया।

बादशाह उस युवक के आचार-व्यवहार, रहन-सहन और विचारो को देख समझकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी प्रकृति उसे अपनी बेटी की प्रकृति के समान प्रतीत हुई। वह बहुत प्रसन्न हुआ। बादशाह ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया कि वह युवक एक छोटा किसान है। मेहनत करके जीवन यापन करता है। बादशाह ने तो देखा कि जीविकोपार्जन के इसके भले साधन है। नैतिकता से जीवन जी रहा है।

बादशाह ने उससे कहा मै राजकुमारी का विवाह तुम्हारे साथ करना चाहता हू। क्या तुम्हे स्वीकार है? युवक ने कहा मै कहाँ किसान कुटी मे रहनेवाला और कहा महलो मे रहनेवाली आपकी बेटी। बादशाह ऐसा न किजिएगा। राजकुमारी जी दु खी होगी। बादशाह ने कहा इन सब बातो पर मुझे विचार करना है, तुम्हे नहीं। तुम केवल साथ चलो। वह युवक बादशाह के साथ-साथ गया और महलो मे बादशाह ने अपनी बेटी इस युवक के साथ ब्याह दी।

ब्याह के बाद बेटी उस युवक के साथ उसकी कुटिया पर गयी। वर–वधु जैसी ही कुटी के निकट आये और कुटी में प्रवेश करने लगे कि शहजादी कुटी के बाहर ही खडी रह गयी। युवक ने उससे कहा प्रिये। कुटिया के भीतर क्यो नहीं आ रही हो ? क्या कारण है ?

शहजादी ने कहा चूल्हे पर क्या पडा है ? युवक ने कहा प्रात चार रोटिया बनाई थीं। उनमे दो रोटियाँ दोपहर के भोजन मे खा ली थीं शेष दो रोटियॉ सायकाल के भोजन के लिए रख ली थीं। वे ही रोटियाँ रखी है। शहजादी ने कहा– बची हुई रोटियाँ किसी गरीब को दे देनी थीं। सायकाल की क्या चिन्ता करनी। यदि जीवन शेष रहा तो और रोटियॉ बनाकर खाई जा सकती है। सग्रह प्रवृत्ति ठीक नहीं। यदि सग्रह प्रवृत्ति ही ठीक होती तो शहजादी किसी शहजादे से ही विवाह कराती। आपसे ही आग्रह क्यो किया जाता। शहजादी के विचार सुनकर युवक प्रसन्न हुआ। इसके बाद समान–प्रकृति होकर वे दोनो प्रेम पूर्वक रहने लगे।

सार यह है कि सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए जिस प्रकृति की बनी हो उसी प्रकृति का बना होना चाहिए। जहॉ भिन्नता होती है वहॉ कलह भी होती है। वित्त और रूप मे दाम्पत्य सुख नहीं। सुख स्वभावो की सादृश्यता मे है। इसी सादृश्यता मे दम्पत्ति दो देह और एक मन होकर रहते है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ७५–७६]

卐

वर्तमान के इस केन्द्र–बिन्दु मे से ही भविष्य और भूत निकलने वाले है। अनागत भी इसी मे से आयेगा और अतीत भी इसी मे ढलकर निकल चुका है। जो व्यक्ति भविष्य की चिन्ता कर रहा है वह व्यक्ति वर्तमान को ठुकरा रहा है। जो कुछ कार्य होता है वह वर्तमान मे होता है और विवेकशील ही उस का सपादन कर सकता है।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित 'गुरुवाणी से)

निन्यान्नवे का फेर

एक समय की बात है। किसी नगर मे एक सेठ रहता था। वह करोडपति था। उसकी अनेक दूकाने थी। रात मे वे कभी बारह बजे के पहले घर नहीं आ पाते थे। जब वे आते, आते ही सो जाते थे। सेठानी से कभी दो बात भी नहीं करते थे। उन्हे तो रात दिन कारोबार की ही चिन्ता खाये जाती थी।

एकदिन सेठानी ने कहा– सेठ जी! आपसे तो अच्छा यह गरीब पडोसी है। समय पर मजदूरी को जाता है और समय पर घर लौटता है। शाम मौज से बैठकर भजन भी गाता है।

सेठ ने कहा सेठानी! यह कुछ रुपयो की थैली है। इसे उस गरीब पडोसी के घर डालकर आ जा। सेठानी ने वह थैली, जब वह घर पर नही था, उसके घर के आगन मे फेक दी। वह गरीब पडौसी प्रात बिस्तर से उठा और घर के आगन मे गया। वहाँ उसे वह थैली प्राप्त हुई। उसने मन मे कहा भगवान् लगता है खुश है। सच है जब उन्हे देना होता है तो वे छप्पर फाड कर देते है। उसने थैली खोली और रुपये गिने। सब रुपये थैली मे निन्यान्नवे निकले।

वह सोचता है एक रुपया मिलाकर पूरे सौ रुपये कर लूगा। वह इस एक रुपये के लिए और अधिक परिश्रम करने लगा। जिस किसी प्रकार जब वह एक रुपया उसमे मिला लिया गया तो उन सौ रुपयो को रखने की चिन्ता हुई। उसने पेटी खरीदनी चाही। उसके लिए पैसा जोडा। जब पेटी खरीद कर घर ले आया और रुपये उसमे रख दिये तब पेटी मे लगाने को ताले की आवश्यकता हुई। फिर उसने अधिक श्रम किया और ताला खरीद लिया। अब उसे सेठ बनने की चिन्ता हुई अत वह घोर परिश्रम करने लगा। अब भजन करना भूल गया। सन्तोष जाता रहा। सेठानी मजदूर को देख विचारती है–

यह निन्यान्नवे का फेर है। जब कुछ नही होता है, मन जितना होता है उसी मे प्रसन्न रहता है। किंतु जब घर मे कुछ होता है तो और होने की लालसा बढती है। इस लालसा का फिर अन्त नही होता। पहले एक रुपये की इच्छा करता है। उसके होने पर दो रुपये की इच्छा करता है। पश्चात् यह इच्छा बढती जाती है। इस प्रकार निन्यानन्वे के चक्कर मे पडकर जीव चक्कर काटता रहता है। कभी सुखी नही रहता। सेठानी ने कहा सेठ जी! सन्तोष धारण करे। सेठ की भी बात समझ मे आ गयी और वे अब समय पर सब काम करने लगे।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ७७–७८]

बुरी नियत का बुरा नतीजा

एक समय की बात है, जयपुर स्टेट मे महाराजा रामसिह राज्य करते थे। वे एक दिन अकेले ही घूमने बहुत दूर जंगल मे चले गये। गर्मी का मौसम था। उन्हे प्यास लगी। उन्होने चारो ओर देखा। एक ओर उन्हे एक कुटी दिखाई दी। उन्होने सोचा कुटी मे अवश्य कोई रहता होगा और वह अपने पीने के लिए पानी भी रखता होगा। महाराजा कुटिया की ओर गये। कुटी के पास पहुँच कर उन्होने कुटिया को झाक कर देखा कि एक बुढिया चारपाई पर लेटी है। राजा ने आवाज दी। बुढिया बाहर आई। उसने नमस्कार किया और वह आदर पूर्वक कुटी के भीतर ले गयी तथा उन्हे चारपाई पर बैठाया। प्यास के कारण राजा ने पानी मागा।

बुढिया ने अकेला पानी पिलाना ठीक न समझा। वह झट बाहर गयी और दो अनार तोड लाई। उसने रस निकाल कर एक गिलास पहले रस पीने को दिया पश्चात अच्छा ठण्डा जल पिलाया। महाराजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने उससे पूछा– तुम यहॉ क्यो रहती हो? तुम्हारे कौन–कौन है?

बुढ़िया ने कहा असवार जी! हमारा एक बेटा है। वह अभी लकडी लेने गया है। मा–बेटे दोनो यहॉ रहते है। मेरी जमीन अनुपजाऊ थी। सरकार से दो आने बीघे मे मिल गयी थी। मा–बेटे ने परिश्रम करके उसे उपजाऊ बना लिया है। हम दोनो की जीविका इसी से चलती है।

राजा की नियत खराब हुई। उसने सोचा ऐसी उपजाऊ जमीन दो आने बीघे मे क्यो दी जाए? राजा चुपचाप वहा से उठा। घोडे पर सवार हुआ और महल लौट आया। उसने दूसरे दिन दो रुपये बीघे का आदेश बुढिया के पास भेज दिया।

राजा की इस नियत का बुढिया की जमीन पर खराब असर हुआ। अनार के पेड़ स्वयमेव उखडकर सूख गये। उपज भी थोडी होने लगी। बुढिया का सुख, दु ख मे बदल गया।

कुछ समय बाद फिर महाराजा रामसिह घूमने निकले। वे फिर इस बार उस बुढिया की कुटी मे पहुँचे। बुढिया ने पहले के समान उनका सत्कार किया। वह दो अनार तोड़ कर लाई। अनार से दाने निकाले। वे दाने उसे शुष्क

और कीड़ेदार दिखाई दिये। बुढ़िया ने दोनो अनार फेंक दिये तथा दूसरे दो अनार तोड लाई। ये अनार भी सड़े निकले। तीन चार अनार के दाने जब इकट्ठे किये तब कहीं आधा गिलास रस निकल पाया।

महाराज रामसिंह यह सब स्वय देख रहे थे। उन्होने बुढिया से कहा–माताजी! दो–तीन वर्ष पहले भी मैं आपके यहाँ आया था। उस समय भी आपने अनार का रस पिलाया था। उस समय दो अनार के रस से ही गिलास भर गया था। अब इन अनारो को क्या हो गया है?

बुढिया ने झट अपने दु ख को प्रकट करते हुए कहा असवार जी! राजा की नियत मे फर्क आ गया। उनकी नियत खराब हो गयी उसी का नतीजा है कि अनार मे कीड़े लग गये और वे नीरस हो गये। फसल भी कम हो गयी। ऊपर से अनुचित रूप से जमीन की कीमत भी बढा दी। बुढिया को यह ज्ञात नही था कि जिससे वह बाते कर रही है वह और कोई नही राजा ही है। उसने तो उसे साधारण घुडसवार समझकर सहज भाव मे यह सब कुछ कह दिया।

यह सच है बुरी नियत का नतीजा बुरा निकलता है। राजा ने स्वार्थ वश बुढिया की जमीन पर अपनी नियत खराब की उसका फल तुरन्त सामने आया कि अनार के फल सड़ने लगे। उनका रस कम हो गया। उपज की मात्रा भी घट गई।

सार यह है कि परणामो मे मलिनता न आने देवे। परणामो का मूक प्रभाव पडता है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ६०–६२]

卐

हमारे अन्दर जो शक्ति है वह कषाय के कारण, राग के कारण द्वेष के कारण छिप रही है, उस शक्ति को उघाडने के लिये सर्वप्रथम समता की अत्यन्त आवश्यकता है।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "गुरुवाणी" से)

उदारता का मधुर फल

विक्रम सम्वत् १८५६ की घटना है। रामपुर नगर मे उस समय रघुवरदयाल नामक एक बोहराजी रहते थे। वे किसानो को अनाज देकर उनकी सहायता करते थे। एक मन अनाज देने पर वे पाँच सेर अधिक वापिस लेते थे। उनके दो बेटे थे। उनके क्रमश गौरीशकर और राधाकृष्ण नाम थे। पिता ने दोनो को अलग–अलग कर दिया था।

एक ही डाल के दो फूल होकर भी दोनो की विचारधारा भिन्न–भिन्न थी। गौरीशकर मे उदारता न के बराबर थी जबकि राधाकृष्ण उदारता का अवतार था। सवत् १८५६ मे ऐसा दुष्काल पडा कि जो अनाज दस आने मन बिकता था वह इस समय पॉच रुपये मन बिकने लगा था।

गौरीशकर ने किसानो को बाढी पर अनाज देना ठीक नहीं समझा। वह लुभा गया। स्वार्थ मे पड गया। उसने अनाज बेच कर कमाई कर लेना ठीक समझा। अवसर बार–बार नहीं मिलते यह सोच कर उसने किसानो के रोकने पर भी सारा अनाज बेच डाला और रुपये जमीन मे गाड दिये।

राधाकृष्ण ने सोचा यह अकाल का समय है। लोग भूख से मर रहे है। यदि अनाज पास मे है तो यह किस काम आवेगा। उसने ढिढोरा पिटवा दिया जो खाने के लिए अनाज चाहे यहॉ से ले जावे। किसान प्रसन्न हुए। उन्हे राहत मिली। गौरीशकर सोचता है कि राधाकृष्ण मूर्ख है। अपना बहुमूल्य अनाज इस तरह लुटा रहा है।

छप्पनिया अकाल धीरे–धीरे समाप्त हो गया। वर्षात् अच्छी होने से सवत् १८५७ मे बहुत अनाज पैदा हुआ। राधाकृष्ण से अनाज लेकर जिन्होने खाया था वे एक मन के बदले दो मन अनाज उसके यहॉ जमा कराने लगे। राधाकृष्ण के यहॉ अनाज की रास लग गई। किसान उससे बहुत प्रसन्न थे। यह था उसकी उदारता का मधुर फल।

इधर गौरीशकर ने अनाज के भाव गिर जाने से अनाज खरीदना चाहा। उसने जमीन मे गाडे हुए रुपये निकालने के लिए जमीन खोदी। उसने देखा कि रुपयो के पैसे बन गये है। यह देखकर वह आश्चर्य मे पड गया और अपने भाग्य पर रोने लगा। यह है उदारता के अभाव का फल और है दुखी किसानो

की आह का प्रतिफल। स्वार्थ की पराकाष्ठा पतन का कारण है। मानवता उदार हृदय मे ही होती है। अत. उदारता कभी न त्यागे।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० ६७–६८]

卐

हित पथ के प्रति अरुचि भाव औ अहित पथ का राग वही।
पाप कर्म का बध कराता अत उसे तू त्याग यही।।
इस से जो विपरीत भाव है पाप मिटाता पुण्य मिले।
दोनो मिटते शिव मिलता पर प्रथम पाप पुनि पुण्य मिटे।।

इष्ट वस्तु जब मिटती तब हो शोक, शोक से दुख होता।
इष्ट वस्तु जब मिलती तब हो राग, राग से सुख होता।।
अत सुधीजन इष्ट हानि मे शोक किये बिन मुदित रहे।
सदा सर्वदा सुखी सर्वथा उन पद मे हम नमित रहे।।

इस भव मे जो सुखी हुआ हो वही सुखी पर भव मे हो।
दुखी रहा है इस जीवन मे वही दुखी पर भव मे हो।।
उचित रहा है सुख का कारण सकल सग का त्याग रहा।
उस से उलटा दुख का कारण ग्रहण सग का राग रहा।।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "गुणोदय" से)

जैसी आवक वैसी जावक

धन जैसी विधाओ से आता है वैसी ही विधाओ मे जाता है। न्यायोपार्जित धन अच्छे कार्यों मे लगता है और अन्यायोपार्जित धन असद् कार्यों मे।

एक समय की बात है। किसी गाव मे एक दर्जी रहता था। उसके दो बेटे थे। बडे का नाम अकाम और छोटे का नाम सकाम था। दोनो प्रतिदिन एक–एक टोपी सिलते थे। दोनो को दो दो पैसे सिलाई के मिलते थे।

अकाम सतोषी था। उसे जो दो पैसे मिलते उनमे एक अपने लिए बचाता था और एक किसी गरीब को दान में दे देता था। एक दिन एक भूखा मनुष्य आया। उसने उसे अपनी कमाई का एक पैसा दे दिया। उस गरीब ने उस पैसे से चने खरीदे और खाकर तथा पानी पीकर उस अकाम दर्जी को आशीर्वाद देता हुआ सोचने लगा कि क्यो न वह भी दर्जी के समान टोपी सिलने लगे। भीख नही मागनी पडेगी। उसने अकाम से टोपी सिलना सीख लिया और प्रतिदिन टोपी सिलने लगा। अब उसका भी समय आन्नद से बीतने लगा।

सकाम दो पैसे मे एक पैसा भोजन मे खर्च करता और शेष एक जोडता था। उसने धीरे–धीरे एक रुपया जोड लिया। वह रुपया लेकर बाजार गया। वहाँ एक दुकानदार लाटरी बेच रहा था। इसने वह एक रुपया लाटरी मे लगा दिया। सयोग की बात थी। लाटरी उसी के नाम खुल गयी और उससे उसे एक लाख की आमद हुई। उसने टोपी सिलना बन्द कर दिया। भाई से अलग हो गया और नया मकान बनाकर ठाठ से रहने लगा। शराब भी पीने लगा। वेश्यावृत्ति की भी आदत पड गयी। अब वह अकाम को तुच्छ समझने लगा।

एक दिन अकाम को एक पैसा दान करते हुए देखकर सोचता है कि वह दो पैसा कमाकर उसमे से एक पैसा दान कर देता है और मै किसी को कुछ नहीं देता। अत उसने भी दान करना चाहा और एक हट्टे–कट्टे खाते पीते पुरूष को झट जेब से निकाल कर पाच रुपये दे दिये। वह भी बहुत खुश हुआ। उसने खुशी मे उस दिन शराब डट कर पी। अकड मे आकर राह चलती एक महिला को छेडा। उसने पुलिस मे रिपोर्ट की। वह पकड़ा गया और जेल भेज दिया गया।

अकाम के न्यायोपार्जित धन के प्रभाव से भूखा भिखारी राह से लग गया। कमाने खाने लगा तथा सकाम को जो बिना परिश्रम के पैसा प्राप्त हुआ उससे न केवल उसका जीवन खराब हुआ अपितु वह उसने जिसको दिया वह

पुरुष भी दुखी हुआ। उस पैसे के प्रभाव से उसे जेल का दण्ड भोगना पड़ा।

इसीलिए कहते हैं धन जैसी राह से आता है वह उसी राह से जाता है। न्याय और परिश्रम पूर्वक कमाया गया धन अच्छे कामों मे लगता है। उससे भले काम होते हैं। अन्याय अनीति और बिना परिश्रम के प्राप्त आय से भलाई के काम नहीं होते। उस आय से बुराइयाँ ही जन्मती हैं। अत अर्जन परिश्रम पूर्वक करना ठीक है।

[कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन पृ० १००–१०१]

卐

ससार–बीच बहिरातम वो कहाता,
झूठा पदार्थ गहता, भव को बढ़ाता।
बेकार मान करता निज को भुलाता,
लक्ष्मी उसे न वरती, अति कष्ट पाता।।५४।।

जो पाप से रहित चेतन मूर्ति प्यारी,
हो प्राप्त शीघ्र उनको भव–दु ख हारी।
जो भी महाश्रमण हैं निज गीत गाते,
सच्चे क्षमादि दश धर्म स्वचित लाते।।५५।।

ससार मे सुख नही दु ख का न पार,
ले आत्म मे रुचि भला, सुख हो अपार।
सिद्धान्त का मनन या कर चाव से तू,
क्यो लोक मे भटकता पर भाव से तू ?।।५८।।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "श्रमण शतक" से)

राज्य-भोग की लालसा

भोगो को भोगने की इच्छाएँ कभी कम नही होती। वे दिन दूनी रात चौगुनी बढती है। भोगो मे राज्यभोग की लालसा और अधिक बलवती होती है। इसका अन्त नहीं होता भले अभिलाषी का अन्त क्यो न हो जावे।

एक समय की बात है। एक राजा था। उसे बताया गया कि नगर मे एक अवधिज्ञानी साधु आये है। राजा को उनके दर्शन करने की इच्छा हुई। वे वहाँ गये जहाँ महाराज थे। राजा ने जाकर सविनय उन्हे नमोऽस्तु की तथा वे शान्त भाव से बैठ गये।

राजा ने उस साधु से कुछ पूछना चाहा। उसके हाव भाव से मुनिराज समझ गये और उन्होने कहा कुछ पूछना हो तो पूछो। राजा ने कहा महाराज! यदि पुनर्जन्म है तो कृपया बताइएगा कि इससे पहले मै कहाँ था और अब मरकर मेरा किस गति मे जन्म होगा?

महाराज ने कहा इस पर्याय के पहले तुम स्वर्ग के देव थे और अब अपने शौचालय मे ही आज से तीसरे दिन मरकर मल के कीट बनोगे क्योकि तुम्हारी राज्य-भोग भोगने की लालसा अब भी ज्यो की त्यो बनी हुई है उसमे कोई कमी नही हुई है।

राजा यह सुनकर अवाक रह गया। उसे बहुत बुरा लगा। वह राजमहल लौटा। उसने राजकुमार को बुलाया और कहा बेटा! मुनिराज ने बताया है कि आज से तीसरे दिन मेरा मरण होगा और मरकर मै मल का कीडा बनूगा। तुम मुझे देखते ही मार डालना।

महाराज का कथन सत्य हुआ। राजा तीसरे दिन मर गया और अपने ही शौचालय मे मल-कीट हुआ। राजकुमार तो उसे मारने तैयार बैठा ही था। जब वह उस कीडे को मारने लगा तो वह झट विष्टा के भीतर छिप गया। राजकुमार बार-बार प्रहार करता रहा और वह भी छिपकर बचता रहा। इसी को कहते है कि मारनेवाले से बचानेवाला बडा होता है। इसी बीच वे मुनिराज वहाँ आ गये। उन्होने राजकुमार से कहा आप कीडे को क्यो मार रहे है? यह मरकर फिर इसी जगह उत्पन्न हो जावेगा। तुम्हे अवश्य हिसा का दोष लगेगा और उस पाप से नरक जाना पडेगा। अत पयार्य-बुद्धि का त्याग कर आत्मा का उद्धार करो इसी मे सार है। राजकुमार समझदार था। वह उस कीडे को वहीं छोड अपने काम मे लग गया।

[हित सम्पादक पृ० १-२]

अविवेकी पिता विवेकी पुत्र

बहुत पुरानी घटना है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पूर्वभवो मे कभी ऋषभदेव का जीव अलका नगरी का अरविन्दघोष नामक राजा था। उसकी रूपवान विजया नाम की रानी थी। इन दोनो के दो पुत्र हुए थे--हरिशचन्द और कुरूविन्द। ये दोनो विनीत और माता-पिता के भक्त थे। राजा बहु परिग्रही एव वहुधन्धी था। उसने नरकायु का बन्ध किया था।

एक समय उसे दाहज्वर हुआ। चन्दनादि के अनेक शीतोपचार किये गये किन्तु उसे शान्ति प्राप्त नहीं हुई। वैद्य भी उपचार करने मे सफल नही हुए। जब अशुभोदय आता है तब ऐसा ही होता है। अपनी वस्तु भी अपने काम नहीं आती। राजा अरविन्द को जो विद्याएँ प्राप्त थी वे भी विमुख हो गयीं। उन्होने भी उसका साथ त्याग दिया।

पुत्रो ने विचार किया कि पिताजी को सीता नदी के तट पर रहने की व्यवस्था कर दी जाए। वहॉ कल्पवृक्ष है। उनकी शीतल सुखद हवा इन्हे मिलेगी किन्तु उनका यह सोचना सार्थक नही हुआ। विद्या ने ऐसा करने मे सहयोग नही किया। सच है पुण्यक्षय होने पर कोई उपाय काम नही करता।

एक दिन राजा पलग पर लेटा था। इतने मे लडते हुए दो छिपकलियॉ उसके पलग के ऊपर आयी। दोनो मे एक छिपकली की पररस्परिक युद्ध मे पूछ कट गयी थी। उससे रूधिर स्राव हो रहा था। उस रूधिर की एक बूद किसी प्रकार उस राजा के मुख मे आ पडी। उसे उससे अल्प शान्ति मिली। इसी समय इसे विभगावधिज्ञान हुआ। पापी को अच्छी बातो का योग कैसे हो सकता है। पापी को तो पाप समर्थक बाते ही प्राप्त होती है।

उसने पुत्र कुरुविन्द को बुलाकर कहा बेटा! कुरूविन्द! मुझे रूधिर की इस एक बुद से बहुत शान्ति मिली है। अत एक रक्तवापिका का निर्माण कराओ। उसमे अपनी देह रखकर शान्ति पाना चाहता हूँ। मुझे बहुत वेदना है।

पिता की आज्ञा पाकर कुरूविन्द वन की ओर गया। वहॉ उसे एक मुनिराज के दर्शन हुए। मुनिराज ने उसे कहा वत्स! तेरे पिता का कुछ ही दिन मे मरण होगा और मरकर वे नरक जावेगे। तू व्यर्थ क्यो हरिण मारने के भाव कर रहा है। हरिण-हत्या रूप किये पाप का फल तू ही भोगेगा। तेरे पिता तेरे कुछ काम न आवेगे और न वे तेरे इस पाप के फल को भोगेगे। दुखी तू ही होगा।

मुनिराज से ऐसा सुनकर उसने विचार किया कि महाराज दिव्यज्ञानी है। उनके वचन अन्यथा नहीं हो सकते। जीवघात सबधी पाप से बचने के लिए उसने वापी को लाख के घोल से भरवा दिया और पिता को हरिणो के रुधिर से वापी के भरे जाने की खबर दे दी। राजा अरविन्द प्रसन्न हुआ। रक्तबुद्धि से उसने उस वापी मे प्रवेश किया किन्तु जैसे ही उसने कुरला किया कि उसे वह रूधिर ज्ञात नहीं हुआ। कुरूविन्द ने पुत्र होकर पिता को ही धोखा दिया, देखता हूँ उसे ऐसा सोचकर वह वापी से बाहर आया और क्रोध मे छुरी लेकर उस पुत्र को मारने दौड़ा कि उसका पैर फिसल गया और अपनी कटार से ही काल के गाल मे जा पहुँचा। रौद्र परिणामो से मरकर वह नारकी हुआ।

हरिण–हिसा रूप भाव करने से राजा अरविन्द ने पापार्जन किया। उस पाप का फल मिला उसे नरकवास। यदि वह विवेक से काम लेता तो उसे ऐसे घोर दु ख नहीं भोगने पडते। कुरुविन्द ने विवेक से काम किया। हरिण–हिसा जनक घोर पाप से वह बच गया। जीवन की सफलता विवेक मे है अविवेक मे नहीं।

[ऋषभ परिचय पृ० ६–८ पद्य २७–३८]

卐

पीता निजानुभव पावन पेय प्याला,
डाले–गले शिव–रमा उस के सुमाला।
जो लोक मे अनुपमा शुचि–धारिणी है
ऐसा जिनेश कहते, सुख–कारिणी है।।२४।।

रागादि भाव पर है पर से न नाता,
ज्ञानी–मुनीश रखता पर मे न जाता।
धिक्कार मूढ पर को करता, कराता,
ना तत्व–बोध रखता, अति दु ख पाता।।२८।।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "श्रमण शतक" से)

ज्ञान बिना चिन्तामणि, पत्थर

एक समय की बात है। किसी नगर मे एक लकड़हारा रहता था। उसके परिवार मे उसकी पत्नी तथा एक बेटा इस प्रकार उस सहित तीन सदस्य थे। एक दिन वह लकड़ियाँ लाने जगल गया। वहाँ लकड़ियाँ बीनते–बीनते उसे एक ऐसा पत्थर दिखाई दिया जो सुहावने वर्ण का गोल और चमकीला था। उसने उसे उठा लिया और सोचा बच्चे को दे दूगा। वह इससे घर में खेलता रहेगा। उसका यही खिलानौ बन जावेगा।

लकडियाँ लेकर वह घर आया और वह गोल पत्थर उसने खेलने के लिए अपने पुत्र को दे दिया। जब रात हुई तो उस पत्थर से ऐसा उजेला हुआ जैसा दीपक जलाने से होता है। वह लकड़हारा सोचता है। यह अच्छा हुआ। अब बाजार से तेल नहीं खरीदना पड़ेगा। तेल मे जो पैसा खर्च होता था वह अब नहीं होगा। पत्थर मे और क्या–क्या खूबियाँ हैं यह उसे कुछ ज्ञात नही था। अत नित्य की तरह लकडियाँ लाकर वह अपनी जीविका जिस किसी प्रकार चलाता रहा।

एक दिन एक जौहरी उसके घर के पास से निकला। उसने उसके बच्चे को उस पत्थर से खेलते हुए देखा। वह अचम्भे मे पड़ गया। उसने उस लकड़हारे से कहा हे भाई! तुम्हारा बच्चा जिस गोल पत्थर से खेल रहा है वह साधारण पत्थर नहीं। वह तो चिन्तामणि रत्न है।

लकडहारे ने कहा हे भाई जौहरी! यह चिन्तामणि रत्न क्या करता है? जौहरी ने कहा इससे जो तुम मागोगे यह वही वस्तु तुम्हे देगा। यह सुनकर वह बहुत खुश हुआ। उससे उसने खीर का भोजन मागा। उसके मागते ही खीर सामने आ गयी। इसके बाद उसने ओढ़ने के लिए शाल मागा तो तत्काल शाल प्राप्त हो गया। इसके बाद उसने सुन्दर महल की माग की तो महल भी बनते देर न लगी। इस प्रकार वह लकड़हारा अब मालामाल हो गया।

जब तक लकडहारे को यह ज्ञात नहीं हुआ कि वह गोल पत्थर उसे मनचाही वस्तु देनेवाला चिन्तामणि रत्न है, उसके रहते हुए भी वह दु खी ही बना रहा। लकडियो से जीविका चलाना उसका बन्द नहीं हुआ किन्तु पत्थर के चिन्तामणि रत्न होने का ज्ञान होते ही वह खुशहाल हो गया। किसी ने कहा भी है–

सबके पल्ले लाल, लाल बिना कोई नहीं।

बना फिरे कगाल, ज्ञान बिना कुछ भी नहीं।।

सार यह है कि ज्ञान ही लक्ष्मी है। आनन्द ज्ञान मे है। वह ज्ञान सभी के पास थोडा बहुत अवश्य होता है। पूर्ण ज्ञान होने पर पुरूष वर्द्धमान कहलाता है और अल्प ज्ञानियो का उपास्य बन जाता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान से ही कल्याण होता है।

[मानव धर्म पृ० १–२]

卐

सच्चा वही धरम् है जिस मे न हिसा,
होगी नहीं वचन से उसकी प्रशसा।
आधार मात्र उसका यदि भव्य लेता,
ससार पार करता बनताऽरिजेता।।७६।।

कोई पदार्थ जग मे न बुरे न अच्छे
ऐसा सदैव कहते गुरूदेव सच्चे।
साधु अत न करते रति, राग, द्वेष
नीराग–भाव धरते धरते न क्लेश।।८०।।

जो आप को समझते सबसे बडे है,
वे धर्म से बहुत दूर अभी खडे है।
मिथ्याभिमान करना सबसे बुरा है
स्वामी! अत न मिलता सुख जो खरा है।।८४।।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा रचित "निजानुभव शतक" से)

निजबोध बिना है सिंह, स्यार

एक समय की बात है एक शेरनी ने एक जगल मे प्रसूति की। शेर को जन्म देने के तुरन्त बाद वह मर गई। वह शेरनी का बच्चा अपनी माँ को देख भी नही पाया था। उसी जगल मे एक स्यारनी ने भी दो बच्चों को जन्मा था। शेरनी के मर जाने से स्यारनी के दया जागी। उसने शेरनी के बच्चे को भी अपने बच्चो के समान दूध पिलाया और बडा किया। वह शेरनी का बच्चा भी स्यारनी को अपनी माँ और स्यारनी के बच्चो को अपना भाई समझता था। इस प्रकार स्यारनी के साथ रहते हुए उसे बहुत दिन हो गये।

एक दिन उस जगल मे रहनेवाला कोई सिह आया। वह स्यारनी के बच्चो पर झपटा। वे डरकर वहॉ से भाग गये और झाडियों मे छिप गये। वह शेर का बच्चा भी डरकर उनके साथ भागा और छिप गया।

वह सिह झाडी के पास जाकर जब उसे शेर के बच्चे को देखता है तब वह आश्चर्यचकित होता है। वह उससे कहता है हे भाई! तुम स्यार नहीं हो। तुम तो शेर हो। मेरे भाई हो तुम्हे नही डरना चाहिए। सब कुछ सिह ने कहा किन्तु उस शेर के बच्चे को विश्वास नही हुआ। पूर्व सस्कार एक साथ नही जाते। उस शेर के बच्चे मे स्यार के सस्कार समाये हुए थे। वह सिह पर कैसे विश्वास कर लेता।

इसके बाद सिह नही खाने का वचन देकर उन तीनो बच्चो को एक तालाब के किनारे ले गया। वहॉ उसने उस शेर के बच्चे से कहा भाई! तालाब मे तुम अपने को और अपने इन साथियो को ध्यान से देखो। तुम इनके समान नही हो। तुम्हारे कन्धे पर केसर है। और देखो मेरे कन्धे पर भी केसर है परन्तु तुम्हारे इन साथियो के केसर नहीं है। तुम निश्चित ही मेरे भाई हो, इनके नही। अब शेर के बच्चे को उस सिह का कुछ विश्वास हुआ और इसमे कुछ रहस्य उसे समझ मे आया। उसने स्यारनी से कहा मॉ। ये मेरे भाई मेरे समान क्यो नही है? उस स्यारनी ने कहा बेटा! तुझे जन्म देकर तेरी मॉ मर गयी थी। मुझे तुम पर दया आई अत मैने अपना दूध पिलाकर तुम्हे बडा किया है। यथार्थ मे तुम मेरे बेटे नही हो। इसीलिए तुम अपने भाईयो के समान नही हो।

शेर के बच्चे ने जैसे ही यह सुना कि उसे निज बोध हुआ। उसे अपनी शक्ति का भान हुआ। उसमे विश्वास जागा कि स्यार तो क्या वह हाथियो को

भी चीर फाडकर खाने की ताकत रखता है। फिर तो वह सिह की भाँति उछलने कूदने लगा। हाथियों पर भी आक्रमण करने लगा। सभी प्राणी उससे डरने लगे।

ऐसे ही निजबोध बिना ससारी प्राणी स्यार बना हुआ है। परमुखापेक्षी बनकर पर मे ममता लगाये हुए है। निज बोध होते ही सिहवृत्ति से रहकर कल्याण कर सकता है। कल्याण के लिए निजबोध आवश्यक है।

[मानव धर्म पृ० ४–५]

卐

मुमुक्ष सम्यग्दृष्टि की बात है वह जब कोई धार्मिक अनुष्ठान करता है तो उस के हृदय मे आनन्द की बाढ आती है। ऐसे महान विषम पचम–काल मे भी महान् सतयुग जैसा कार्य अनुभूत होता है, जिसका सहज ही आनन्द अनुभव होता है।

जैन धर्म की विशालता को ध्यान मे रखते हुए सभी जैनियो को धर्म का प्रचार–प्रसार जैनियो की सीमा तक ही नहीं करना चाहिये। जो कोई भी धर्म से स्खलित है, पथ से दूर हैं उन्हे धर्म मार्ग पर जाने का प्रयास करना चाहिए। जो पतित हैं उन्हे गले लगाना चाहिए।

दान के बिना अहिंसा की रक्षा न आज तक हुई है और न आगे होगी। पैसे वालो को भूदान, आवासदान, शैक्षणिकदान, आहारदान आदि सभी पर ध्यान देना जरुरी है। अभयदान का भी ध्यान रखे।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज के प्रवचनो से)

छिपे न सांचा प्रेम

किसी ने ठीक ही कहा है– प्रेम छिपाये न छिपे कोटिन करो उपाय। एक समय की बात है किसी नगर मे एक सेठ रहता था। उसके दो बेटे थे। दोनो के विवाह हो गये थे। दोनो की बहुए साथ–साथ रहती थीं। इन दोनों मे जिठानी के कोई सन्तान नहीं हुई। आगे होने की भी कोई आशा न थी। देवरानी के एक बच्चा था। इस बच्चे को जिठानी हथिया लेना चाहती थी। उसने उस बच्चे पर स्नेह करना आरम्भ किया। उसे वह खाने–पीने को भी देने लगी। बच्चे को दो ही चीजे मुख्य होती है– स्नेह और खाने पीने की वस्तुए। जहाँ ये दोनो उन्हे उपलब्ध होती हैं वे वहीं रहने लगते हैं। इस बच्चे के साथ भी यही हुआ। बड़ी माँ से उसे दोनो बातें प्राप्त हुई अत वह उन्हीं के पास रहने लगा। देवरानी ने भी सोचा कोई बात नहीं। बच्चा जिठानी के पास रहे या मेरे पास कोई अन्तर नहीं पडता।

थोडे दिन पश्चात् बच्चा अपनी माँ को भूल गया और बडी माँ को ही अपनी माँ समझने लगा। देवरानी और जिठानी मे आपस मे मनोमालिन्य हो गया। यह मनोमालिन्य इतना बढा कि उन्होने आपस मे बात करना भी बन्द कर दिया। देवरानी ने सोचा अपने बच्चे को अपने पास बुला लेना ठीक होगा। उसके बच्चे का नाम गीगा था। उसने उसे बुलाया और कहा बेटा। अब अपने घर आ जा।

यह सुनकर जिठानी ने तपक कर कहा। बच्चे को क्यो फुसलाती है। क्या बच्चा तेरा है? बडी मुश्किल से इसे पाला है, बडा किया है। तुझे कैसे दे दूँ। जिठानी से यह सुनकर देवरानी भौचक्की होकर रह गयी। उसने विवश होकर राजा के पास निर्णय के लिए आवेदन कर दिया।

राजा ने बच्चे से पूछा तो बच्चा बड़ी माँ को ही माँ बताता था। गवाह कोई था नहीं। राजा चिन्ता मे था। मन्त्री चतुर था। उसने राजा से कहा राजन्! बच्चे के दो हिस्से करके एक–एक हिस्सा प्रत्येक को दे दे। राजा ने जल्लाद बुलाये और बच्चे के दो टुकडे करने को कहा। देवरानी ने हाथ जोड़कर गिडगिडा कर कहा राजन्। ऐसा न कीजिए। बच्चा जिठानी को ही दे दीजिएगा। मैं इसे देखकर ही जीती रहूँगी। जिठानी ने कहा जब

बच्चे के टुकडे होने लगे तब तूने कहा बच्चा जिठानी का है उसे दे दो। यही बात तू पहले भी कह सकती थी।

राजा को सत्य समझते देर न लगी। उसने उस देवरानी को बच्चा दे दिया जिसने बच्चे के मरने का नाम सुनना भी अच्छा नहीं समझा। यह है स्वाभाविक प्रेम। सब जीवो के साथ ऐसा ही प्रेम रहे।

[मानव धर्म पृ० २२]

卐

जैन धर्म कोई जाति परक धर्म नही है। जैन धर्म उस बहती गगा के समान है जिस मे कोई भी व्यक्ति स्नान कर सकता है और आने पापो को मिटा सकता है। उस मे अवगाहन करके अपने कषाय भावो को, विकारो को पृथक् कर हृदय एव मन को, तन को भी स्वच्छ–साफ किया जा सकता है। जैन धर्म का आधार लेने के उपरान्त भी जो व्यक्ति केवल *अहकार–ममकार* को पुष्ट बनाता है वह अपने जीवन काल मे कभी भी धर्म का सही स्वाद नही ले सकता। उज्जवल भाव–धारा का नाम धर्म है।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज के प्रवचनो से)

अति लोभी को सुख नहीं

लोभ का दूसरा नाम तृष्णा है। यह कभी जीर्ण नहीं होती। सदैव दुख देती है।

एक समय की बात है। एक शिकारी शिकार के लिए जगल गया। वहाँ उसने सर्वप्रथम एक हिरण का शिकार किया। शिकार की दौडभाग मे वह नीचे न देख सका। उसका पैर एक सर्प पर जा पडा। सर्प ने उसे डस लिया। सर्प के काटने से वह शिकारी भूमि पर गिर गया और मर गया। शिकारी योग की बात है उस सर्प के ऊपर ही गिरा अत सर्प भी न बच सका। उसके भी प्राण निकल गये। अपने–अपने दुष्कृत्य का फल दोनो को तत्काल मिल गया।

झाडियो मे छिपते–छिपते वहाँ एक स्यार आया। उसे हरिण, शिकारी और सर्प तीनो मरकर भूमि पर पडे हुए दिखाई दिये। वह बहुत प्रसन्न हुआ। सोचता है आज अच्छी भोजन सामग्री प्राप्त हुई। इससे बहुत दिनो का गुजारा हो जावेगा। आज पहला दिन है। धनुष मे जो तात लगी हुई है उसे ही खाया जावे। उससे पेट भी भर जायेगा। बची सामग्री बाद मे खाऊँगा।

ऐसा विचार करके उसने जैसे ही तात खाना आरम्भ किया तात का बधन टूटते ही धनुष का बास बडे वेग से उचटकर उसके गले मे लगा और वह भी तत्काल वही मर गया।

अति लोभ का ऐसा ही फल प्राप्त होता है। यदि स्यार ने तृष्णा न की होती तो उसका मरण भी न हुआ होता। अत सुख चाहनेवालो को यह आवश्यक है कि वे लोभी न बने। सतोष धारण करे। शाति और सुख सन्तोष मे ही है।

[मानव धर्म भाग २, पृ० १६]

पिता का पुत्र स्नेह

एक समय की बात है। किसी नगर में एक दण्ड नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सुन्दरी था। उसका जैसा नाम था, वह वैसी ही थी। उन दोनो मे परस्पर मे बहुत प्रीति थी। ऐसा लगता था। मानो पूर्व जन्म के सम्बन्ध हो।

इन दोनो के एक पुत्र था। उन्होने उसका नाम मणिमाली रखा था। दोनो उसे बहुत प्यार करते थे। एक दिन राजा ने समस्त राज्य भार उसे ही सौप दिया और स्वय काम–कथा मे लग गया। इसका जीवन सार्थक न हो सका। यह आर्तध्यान से मरा।

पुत्रस्नेह अधिक रहने के कारण मरते समय भी वह स्नेह बना रहा। इस स्नेह के फलस्वरूप वह मरकर खजाने मे अजगर सर्प हुआ। उसे जातिस्मरण हुआ। मणिमाली को अपना पुत्र जानकर इस पर्याय मे भी वह उस पर विशेष स्नेह रखता है। खजाने मे जब वह मणिमाली आता तब वह शात रहता था किन्तु यदि कोई दूसरा प्रवेश करता तो उसे वह दूर से ही फुफकार कर भयभीत कर देता था।

एक दिन मणिमाली ने यह घटना एक मुनिराज से निवेदित की। मुनिराज ने कहा मणिमाली! अजगर सर्प तुम्हारा पिता है। इस पर्याप्य मे भी तुम्हारे ऊपर उसका स्नेह है। मुनिराज से ऐसा ज्ञात कर मणिमाली खजाने मे गया और उस अजगर को उसने समझाया। उसने कहा हे अजगर! लोभ कषाय वश नर तन से तुम्हे अजगरतन मिला है। विषय वासनाओ को त्यागो और जिनेन्द्र का ध्यान करो। धर्मध्यान मे रहकर पापास्रव को रोको।

पुत्र स्नेही उस अजगर को पुत्र की बात समझ आई। उसने विषय वासनाओ का त्याग कर दिया और वह धार्मिक जीवन बिताने लगा। उसका सन्यासपूर्वक मरण हुआ। मरकर वह ऋद्धिधारी देव हुआ। इस पर्याय मे भी उसका पुत्रस्नेह बना रहा। अवधिज्ञान से मणिमाली को पूर्वपर्यायो मे दण्ड राजा की पर्याय का अपना पुत्र जानकर उस देव ने स्वर्ग से आकर एक रत्नहार मणिमाली को दिया था और प्रसन्नता व्यक्त की थी।

पिता का पुत्र पर निश्चित ही अमिट स्नेह होता है। यह स्नेह आगामी पर्यायो मे भी बना रहता है।

[ऋृषभचरित पृ० ८–६, पद्य ३८–४१]

पात्रदान की महिमा न्यारी

बहुत पुरानी घटना है। पूर्व विदेह मे एक पुण्डरीकिणी नाम की नगरी थी। चक्रवर्ती वज्रदन्त वहाँ के राजा थे। लक्ष्मीमती इसकी प्रिया और श्रीमती पुत्री थी। चक्रवर्ती वज्रदन्त के बहनोई वज्रबाहु उत्पल खेट नगर के राजा थे। उनके पुत्र का नाम वज्रजघ था।

कहते हैं जब काम बनना होता है तब निमित्त भी वैसे ही मिल जाते हैं। राजा वज्रबाहु अपनी रानी तथा पुत्र वज्रजघ के साथ वज्रदन्त चक्री के यहाँ आया। चक्री ने उनका यथोचित सत्कार किया। उन्होने कहा–मेरा सौभाग्य है जो आप मेरे घर पधारे हैं। आपको जो इष्ट हो वह ग्रहण करे।

वज्रबाहु ने विनय पूर्वक कहा– आपकी कृपा से कोई कमी नहीं है। आपकी बात का आदर करता हूँ। आपकी पुत्री श्रीमती मेरे पुत्र वज्रजघ को दे दीजिए। मैं चाहता हूँ कि दोनो दाम्पत्य जीवन मे बँधे और हमारा स्नेह स्थाई हो।

चक्रवर्ती ने अपने बहनोई की बात स्वीकार कर ली। वह अपनी पुत्री श्रीमती अपने भाजे वज्रजघ को देने के लिए सहर्ष तैयार हो गया। स्थपतिरत्न ने मण्डप तैयार किया और वहाँ दोनो का विवाह कर दिया गया। इस विवाह मे किसी भी प्रकार के दहेज की माग नहीं की गयी थी। एक विशेषता और थी कि वज्रजघ की बहिन अनुन्धरी चक्री वज्रदन्त के पुत्र अमिततेज के साथ विवाही गयी थी।

वज्रजघ और श्रीमती के एक सौ दो पुत्र हुए थे। चक्री वज्रदन्त के दीक्षित होने पर वज्रजघ और श्रीमती दोनो वज्रदन्त के यहाँ गये थे। जाते समय वन मे कान्तारचर्यावाले दो मुनियो के दर्शन हुए। दोनो ने उन्हे पड़गाहा और नवधा–भक्ति से उन्हे आहार दिया। देवो ने इस दान की प्रशसा की। मुनियो ने धर्मवृद्धि कहकर इन्हे बताया कि श्रीमती का जीव श्रेयास के रूप मे जन्म लेकर पात्र दान (आहार दान) परम्परा को जन्म देकर उसी भव मे मुक्ति प्राप्त करेगा। हे नृप! आप आठवे भव मे भोगभूमि मे नर तन प्राप्त कर तीर्थंकर होगे।

मुनि के वचन अन्यथा नहीं होते। वज्रजघ और श्रीमती दोनो पुण्डरीकिणी नगरी मे शयनागार मे सो रहे थे। महल की खिड़कियाँ बन्द थीं। धुएँ से दोनो का दम घुट गया। दोनो मरकर उत्तर कुरुभूमि (भोगभूमि) मे उत्पन्न हुए। यह है पात्रदान की महिमा। सुख–सम्पन्नता के लिए इससे बढ़कर कोई दान नहीं। धन्य हैं वे जीव जो पात्रदान मे अपनी बुद्धि लगाते हैं।

[ऋषभ चरित भाग–२ पद्य २–३ २५–३७, अध्याय ३ पद्य १–५, ३३–४२]

पाप कटें व्रत किये से

एक समय की बात है। धातकीखण्ड द्वीप मे एक गन्धिल नाम का देश था। उस देश मे अनेक ग्राम थे किन्तु पाटण नामक ग्राम बहुत प्रसिद्ध था। इस ग्राम मे एक नागदत्त नामक वैश्य रहता था। उसकी सुरती नाम की प्रिया थी। इन दोनो के पॉच पुत्र और तीन पुत्रियॉ थी। पुत्रियो मे निर्नामिका नाम की पुत्री छोटी थी।

इस पुत्री के जन्मते ही सम्पूर्ण कुटुम्ब विनाश को प्राप्त हुआ। एकाकिनी रहकर इसने अपने जीवन मे अनेक कष्ट उठाये थे। एक दिन इसे पिहितास्रव नामक मुनि के दर्शन हुए। वह बहुत प्रसन्न हुई। अवसर पाकर उसने मुनि से अपने एकाकी जीवन का कारण पूछा। मुनि दयालु थे। उन्होने कहा– निर्नामिके!

पलाश पर्वत पर एक ग्रामकूटक पुजारी रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुमति और पुत्री का नाम वनश्री था। उस पुत्री को तरुकोटर मे स्थित एक समाधिगुप्त मुनि मिले थे। उसने उनकी निन्दा की थी तथा उनके आगे एक मरा कुत्ता डाल दिया था। उसके सद् विचार ऐसे नष्ट हो गये थे जैसे पाला पड जाने पर फसल नष्ट हो जाती है। समाधिगुप्त मुनि ने उसको सम्बोधित किया था जिसके फल–स्वरूप उसने आत्मनिन्दा की थी और बहुत पश्चाताप करते हुए आत्म–ग्लानि से भर गयी थी।

हे निर्मामिके! तू ही वनश्री है। पूर्व भव मे की गयी साधु–अवज्ञा के फल–स्वरूप तुझे इस पर्याय मे अनेक कष्ट उठाने पडे है। वह मुनि से पूर्व भव मे किये गये अपने कुकृत्य को सुनकर बहुत दुखी हुई। वह भय से कॉपने लगी। उसने अपनी अज्ञानता के लिए क्षमा याचना की और दु खो से मुक्त होने का मुनि से उपाय पूछा। मुनि ने कहा– निर्नामिके! तुम जिनगुणसम्पत्ति व्रत किया करो।

उसने मुनि से उपदेश सुनकर और अपना पूर्वभव ज्ञातकर दु खो से छूटने के लिए जिनगुणसम्पत्तिव्रत करना आरम्भ किया। इस व्रताचरण के फलस्वरूप वह समाधिपूर्वक स्व शरीर त्यागकर स्वर्ग मे स्वयप्रभा नाम की देवागना हुई। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के जीव ललिताग देव की उस पर्याय मे प्रिया थी। स्वर्ग से चयकर वह पूर्व विदेह क्षेत्र की पुण्डरीकिणी नगरी के चक्रवर्ती वज्रदन्त की श्रीमती नाम की पुत्री हुई। इस प्रकार व्रत का पालन करने से उसके सर्व दु ख दूर हो गये। अचिन्त्य है व्रतो की महिमा और अचिन्त्य है उनका फल।

[ॠषभ चरित अध्याय दूसरा, पृ० १६–१९ पद्य १–१७]

मृगसेन धीवर व्रत-फल

एक समय की बात है। इसी जम्बूद्वीप और भारतवर्ष के आर्यखण्ड मे एक प्रसिद्ध मालव देश था। इस देश मे उज्जयिनी नाम की एक बडी नगरी थी, जो आज भी है। इस नगरी मे किसी समय वृषभदत्त नाम के राजा राज्य करते थे। वृषभदत्ता उनकी रानी थीं। इस नगरी मे एक गुणपाल नाम का राजश्रेष्ठी भी था। वह कुबेर के समान धनवाम था। वह जो सेचता उसे पूरा करके छोडता था। इस सेठ की सेठानी का नाम गुणश्री था। इन दोनो की एक पुत्री थी जिसका नाम इन्होने विषा रखा था।

एक दिन गुणपाल के परिजनो के जूठे बर्तन बाहर रखे हुए थे। एकाएक एक बालक आया और वह जूठन खाने लगा। उसी समय दो महामुनि गुणपाल की ओर आये। छोटे मुनि ने उस लडके को जूठन खाते हुए देखा। उन्होने बडे मुनिराज से कहा हे प्रभो! यह बालक होनहार है। शारीरिक लक्षणो से भाग्यशाली प्रतीत होता है, फिर दीन क्यो है?

बडे मुनिराज ने कहा– यह बालक गुणपाल की लड़की को व्याहेगा और गुणपाल की सम्पत्ति पाकर राजा से भी सम्मान पावेगा। इसी नगरी का सार्थवाह श्रीदत्त और उसकी पत्नी श्रीमती इसके माता–पिता है। वे इसके जन्मते ही मर गये है।

छोटे मुनि ने यह सुनकर फिर कहा स्वामी! इसके माता–पिता बचपन मे ही क्यो मर गये? यह राज्य–सम्मान का पात्र कैसे बनेगा? कृपया यह समझाइएगा। बडे मुनिराज ने कहा– इस अवन्ति मे सिप्रा नाम की एक नदी है। इसके तट पर शिशपा नाम की एक नगरी है। वहॉ एक मृगसेन नाम का धीवर रहता था। भवदेव उसके पिता और भवश्री उसकी माता थी। इसका विवाह धीवर सोमदास और धीवरी सेना की पुत्री घण्टा के साथ हुआ था।

मृगसेन धीवर अपने परिवार का पालन पोषण मछलियॉ पकड़कर किया करता था। एक दिन वह जाल लेकर जा रहा था। मार्ग मे उसे पार्श्वनाथ जिन मदिर के पास एक भीड को सम्बोधित करते हुए एक निर्ग्रन्थ मुनि दिखाई दिये। उपदेश सुनकर उसके मन मे विचार आये कि सभी प्रणियो को जीवित रहने का अधिकार है। जीवो को मारने का हमे अधिकार नहीं। उसने मुनिराज के चरणकमल पकड लिये और अपना उद्धार करने का उनसे मार्ग पूछा। मुनि

ने कहा— हिंसा से यदि विरक्त नहीं हो सकते तो कम से कम जाल मे जो सबसे पहले मछली आवे उसे नहीं मारने का नियम लो। मृगसेन ने सहर्ष स्वीकार किया। इसके पश्चात् मृगसेन ने चार बार नदी मे जाल डाला और बार–बार वही मछली जाल मे आती रही जो पहली बार जाल मे आई थी तथा जिसे उसने छोड़ दिया था। उसने व्रत की रक्षा की।

वह घर खाली हाथ पहुँचा। उसने पत्नी से सम्पूर्ण कथा कह दी। उसकी पत्नी घण्टा कुपित हुई और उसने मृगसेन को घर से निकाल दिया। इसके बाद वह पश्चाताप करती हुए उसे खोजने निकली और एक धर्मशाला मे उसे मृत पाकर बहुत दु खी हुई। वह सोचती है— अब पछताये क्या होत जब चिडियॉ चुग गई खेत। वह विचारती है कि अब मुझे भी वही व्रत ले लेना चाहिए। प्राणियो का सहार करना ठीक नहीं। ऐसा विचार करते हुए वह वहॉ विश्राम कर रही थी कि जिस सर्प ने मृगसेन को डसा था, उसी ने आकर उसे भी डस लिया। मरकर वह सेठ गुणपाल की विषा नाम की पुत्री हुई। जीव को सुख–दुख अपने पूर्वापार्जित कर्म के अनुसार होते हैं।

सेठ गुणपाल मुनि के वचन सुनकर आश्चर्य मे पड़ गया। उसने सोचा "न रहेगा बॉस न बजेगी बॉसुरी"। जूठन खानेवाले बालक को मार डाला जाय। मर जाने पर वह मेरी बच्ची का पति नही बन सकेगा। सेठ ने चाण्डाल को बुलाकर उस बालक को मार डालने को कहा। चाण्डाल विचारता है कि हम जीव वध किया करते हैं किन्तु राह चलते जीव को मार डालना उचित नहीं। हमे सेठ की बात नहीं मानना चाहिए। चाण्डाल रात मे उस बालक को ले गया और नदी–तट पर जामुन वृक्ष के नीचे छोडकर घर वापिस आ गया। सेठ ने साधु को मिथ्या करने का उपाय किया किन्तु असफल रहा। सच है मुनि के वचन अन्यथा नहीं होते।

गोविन्द नामक एक ग्वाले ने उस बालक को देखा और प्रसन्न हुआ। उसने उसे ले जाकर अपनी पत्नी धनश्री को दे दिया। वह बहुत प्रसन्न हुई। उसके स्तनो मे दूध भर आया। वह सोचती है कि उदर से पैदा हुए पुत्र की अपेक्षा गोद मे आया हुआ पुत्र अधिक सुख देनेवाला होता है। वह उसे सोमदत्त कहकर पालने लगी और सोमदत्त भी धनश्री को ही अपनी माता समझने लगा।

युवा होने पर सोमदत्त और सुन्दर लगने लगा। एक दिन सेठ गुणपाल राज कार्य से ग्वालो की बस्ती मे आया। सोमदत्त को देखते ही पहिचान गया। उसके जीवित होने मे उसे आश्चर्य हुआ। उसने गोविन्द ग्वाले से कहा— क्या तुम्हारा यही एक पुत्र है या और भी हैं। उसने कहा— यह भी हमारा औरस पुत्र

नहीं है। क्या करूँ। भाग्यहीन हूँ। मुझे यह बालक अपने नगर के बाहर एक वृक्ष के नीचे मिला था। बड़ा विनयवान है। औरस पुत्र से भी बढ़कर सुखदायी है।

सेठ गुण्पाल सोचता है चाण्डाल महाठग निकला। गोविन्द ने सोमदत्त को कहा– बेटा! गुणपाल अपने अतिथि हैं। ये जो कहें उनका काम कर दिया करो। सेठ फिर सोमदत्त को मारना चाहता है। नीति है– जिसका विनाश करना चाहे उसको शिर पर चढा ले जैसे जलाने के लिए इन्धन सिर पर लाया जाता है। उसने सोमदत्त को दे लेकर अपने अनुकूल बना लिया।

एक दिन सेठ ने पत्र लेकर सोमदत्त को अपने घर भेजा। वह थक जाने से नगर के बाहर उपवन मे सो गया। वहाँ वसन्तसेना वेश्या आई। उसने सोमदत्त के गले मे बँधे पत्र को धीरे से खोला। उसने पढा। पत्र मे सोमदत्त को मारने के लिए पत्नी को सकेत किया गया था। विष देकर मारने को लिखा गया था। वेश्या ने "विष सन्दातव्य" के स्थान मे विषा सन्दातव्या काजल मे सलाई भरकर लिख दिया और पत्र यथा स्थान बाँधकर चली गयी। इसीलिए कहते है मारनेवाले से बचाने वाला बडा होता है।

थोडी देर बाद सोमदत्त उठा और नगर मे गया। विषा ने उसे देखा। वह उस पर मुग्ध हुई। सोमदत्त विषा के घर गया और उसने पत्र दे दिया। विषा के भाई महाबल और माँ दोनो सोचने लगे सेठ क्यो नहीं आये। सोमदत्त ने कहा उन्होने आने मे असमर्थता प्रकट की है। महाबल ने सोचा दूसरे दिन अक्षय तृतीया और गुरुवार का शुभ योग है। पिता जी ने इसीलिए ऐसा लिखा होगा। ऐसा सोचकर उसने विषा का उसके साथ विवाह कर दिया। सच है किसी के बुरा विचारने से बुरा नहीं होता।

सेठ गुणपाल ने जब सोमदत्त के विवाह की बात सुनी तो वह घर आया। उसके मन मे जानते हुए भी कि विषा विधवा हो जावेगी, सोमदत्त को अब भी मारने के भाव हुए। उसने नागपचमी के दिन सोमदत्त को पूजा समग्री लेकर भेजा और चाण्डाल को उसे मारने का आदेश दिया। चाण्डाल ने कहा– बेकसूर को मारना ठीक नहीं। अन्त मे अशरफियाँ पाकर चाण्डाल लुभा गया और मारने को तैयार हो गया। सोमदत्त पूजन सामग्री लेकर चला। राह मे महाबल से भेट हुई। वह गेद खेल रहा था। उसने कहा सोमदत्त तुम गेद खेलो, मैं सामग्री लेकर जा रहा हूँ। वह जैसे ही मन्दिर पहुँचा कि तलवार से मार डाला गया। जड के द्वारा पिया गया जल जैसे वृक्ष के फलो मे आकर प्रकट होता है ऐसे ही पिता के दुष्कर्मों का फल पुत्र को भोगना पडा।

सेठ के घर आने पर उसे सोमदत्त दिखाई दिया। सोमदत्त ने पूजा

सामग्री लेकर महाबल के जाने की बात प्रकट की। महाबल का मारा जाना ज्ञात कर गुणपाल, गुणश्री और विषा बहुत दुखी हुए। सोमदत्त ने मृतात्मा को शान्ति प्राप्त होने की कामना की।

गुणश्री ने अपने पति से उसकी उदासीनता का कारण पूछा और उसने भी सोमदत्त के न मारे जा सकने की बात प्रकट की। गुणश्री उसकी सहायता करने तैयार हुई। सोमदत्त को मारने के लिए एक दिन उसने विष मिश्रित लड्डू बनाये और रसोई घर मे विषा को बैठाकर शौचबाधा के निवारणार्थ बाहर चली गयी। इसी बीच गुणपाल आया और उसने विषा से कुछ खाने को मागा। विषा ने सरलभाव से माता द्वारा बनाये गये दो लड्डू गुणपाल को दे दिये। गुणपाल लड्डू खाकर धडाम से गिर गया। विषा के पुकारने पर जब तक लोग आये तब तक गुणपाल मर चुका था। गुणश्री ने लौटकर गुणपाल को मरा पाया। वह सोचने लगी– सच है सूर्य के ऊपर उछाली गयी धूल फेकनेवाले के ही ऊपर आ गिरती है। मेरे स्वामी का ही विनाष हुआ। लोगो के पूछने पर उसने स्पष्ट कह दिया कि सोमदत्त को मारने के लिए मेरे स्वामी विष लाये। मैने विष मिला कर लड्डू तैयार किये। मेरे न रहने पर सेठ जी आये। सरलभाव से विषा ने उन्हे लड्डू परोस दिये। गुणश्री ने कहा अब मै भी जी कर क्या करूँगी? विषान्न खाकर मुझे भी मर जाना चाहिए।

दर्शक आश्चर्य मे पड गये। गुण्पाल की निदा करने लगे। गेद खेलनेवाले बालको ने महाबल की मृत्यु का कारण भी इसे ही बताया। वेश्या वसन्तसेना ने कहा सेठ ने सोमदत्त को जमाई नही बनाया है। विष के स्थान मे उसे विषा दी गयी है। यह मै अच्छी तरह जानती हूँ।

इस प्रकार गुणपाल और गुणश्री दोनो मर गये। राजा ने उनका मरण जानकर और मरण की कथा सुनकर सोमदत्त को महापुरुष जाना। राजा ने उसे राजदरबार मे बुलाया और इसके वहॉ जाने पर राजा ने इसे आसन दिया। सोमदत्त के आसन पर बैठने से इनकार किये जाने पर मत्री ने कहा आप अतिथि है अत सम्मान के पात्र है। बहुत कहने के बाद सोमदत्त आसन पर बैठा। राजा ने क्षेम कुशलता पूछी और उसके श्वसुर तथा सासू के मरण को विधि का विधान बताया। राजा ने उससे राजकुमारी का पाणिग्रहण करके उसे आधा राज्य देकर अपने समान बना लिया। राजा ने कहा मेरी पुत्री का नाम गुणमाला है। यह गुणो की माला है। इस पर स्नेह–दृष्टि रखिएगा। राजा ने कहा बेटी! विषा तेरी बड़ी बहिन है। इसके कहे अनुसार ही आचरण करना। इसके बाद सभी सोमदत्त को सम्मान देने लगे।

इसी बीच एक दिन साधु को आते देखकर सोमदत्त और विषा ने पडगाह कर आहार दिया। देवो ने प्रशसा की। राजकुमारी भी प्रसन्न हुई। महाराज का उपदेश हुआ। सोमदत्त ने दिगम्बर दीक्षा ली। विषा और वसन्तसेना वेश्या ने आर्यिका के व्रत अगीकार किये। तप करते हुए शरीरत्यागकर सोमदत्त सर्वार्थसिद्धि मे उत्पन्न हुआ और विषा तथा वसन्तसेना स्वर्ग गयीं।

यह है अहिसा का फल। व्रताचरण के यथा रीति निर्वहन करने का प्रभाव। मृगसेन धीवर जाल मे आई प्रथम मछली के न मारने के व्रत का पालन करके आगामी भव मे सेठ की विशाल सम्पदा का स्वामी बना। राजा ने अपनी कन्या और आधा राज्य दिया। आगे कर्मबन्धनो से मुक्त होने के मार्ग पर उसके चरण बढे।

[दयोदय से साभार]

卐

श्रद्धान जैनमत मे अति शुद्ध होना,
सम्यक्त्व का चरण–चारित धार लो ना।
औ सयमाचरण चारित दूसरा है,
सर्वज्ञ से कथित सेवित है खरा है।।

(चारित्रपाहुड ५)

मिथ्यात्व पक तुम ने निज् पे लिपाया,
शकादि मैल दृग के दृग पे छिपाया।
वाक् काय से मनस से उनको हटाओ,
सम्यक्त्व आचरण मे निज को बिठाओ।।

(चारित्रपाहुड ६)

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज द्वारा अनूदित चरित्रपाहुड का पद्यानुवाद "कुन्दकुन्द का कुन्दन" से)

पुण्यात्मा धन्यकुमार

लगभग ढाई हजार वर्ष पुरानी घटना है। भारतवर्ष के सौराष्ट्र प्रान्त मे एक पैठान नामक नगर था। यहाँ एक धनसार नामक सेठ रहता था। उसकी सेठानी का नाम कमला था। उसके तीन पुत्र थे। चौथा होनेवाला था। यथासमय वह हुआ। उसका नाल गाडने के लिए जैसे ही कुदाल चलाया गया कि वह धन से जा टकराया। बहुत धन मिला। वह धन उसके जन्मोत्सव पर खुले हाथो खर्च किया गया। माता पिता, नगर सब धन्य हुए। अत शिशु का नाम धन्यकुमार रखा गया।

धनसार सेठ– धन्यकुमार भाग्यशाली है, यह कहकर उसकी प्रशसा करते थे। यह प्रशसा धनसार सेठ के तीनो पुत्रो को रुचिकर नहीं होती थी। धनसार ने उनसे कहा–धन्यकुमार पुण्य पुरूष है। उसके जन्म के समय हमे बहुत धन मिला था।

वे पुत्र बोले पिताजी! धन्यकुमार पुण्यात्मा है तो क्या हम पापात्मा है। हमे तो लगता है कि इसका यश फैलाने के लिए आपने यह धन जमीन मे छिपा रखा था। हम सबमे कौन अच्छा है आप परीक्षा कर लीजिए।

सेठ ने तीनो को दस–दस तोले स्वर्ण देकर व्यापार करने को कहा तथा आय से एक–एक दिन का सामाजिक भोज कराने का निर्णय भी लिया। तीनो ने व्यापार किया किन्तु असफल रहे। धन्यकुमार घर से निकला। ईश्वरदत्त साहू की दूकान पर आया। उसने बजारे का माल खरीदने की खबर पढी। वह बजारे के पास गया और मीठी–मीठी बाते सुनाकर सस्ते मे सौदा कर लिया। साई मे उसे उसने दस तोला स्वर्ण दे दिया। इसी माल को खरीदने ईश्वरदत्त साहू के कर्मचारी आये। उन्होने देखा कि माल तो बिक चुका है। अत उन्होने खाली हाथ जाना ठीक न समझकर एक लाख रुपया मुनाफा मे देकर धन्यकुमार से वह माल खरीद लिया।

धन्यकुमार ने घर आकर आदर पूर्वक सबको जिमाया। भाइयो और भाभियो को वस्त्र भेट मे दिये। नागरिको ने उसकी बहुत प्रशसा की। परन्तु तीनो भाई अप्रसन्न रहे। उन्होने पिता से पुन परीक्षा लेने के लिए कहा। पिता ने भी इस बार दुगुना स्वर्ण बीस–बीस तोले देकर उन्हे वहाँ से विदा किया।

धनदत्तादि उन तीनो भाइयो ने कठोर श्रम किया किन्तु भाग्यहीन होने

से वे इस बार भी सफल नहीं हुए। वे तीन दिन के भूखे अपना सा मुँह लिए घर लौट आये।

अब धन्यकुमार पिता का दिया स्वर्ण लेकर निकला। उसे एक मेष विक्रेता मिला। इसने मेढे के सुलक्षण देखकर मेढा खरीद लिया। आगे चला तो उसे मेढो का युद्ध होते दिखाई दिया। इसने राजपुत्र से कहा– मेरे इस मेढे को लड़ाओ। यह अवश्य जीतेगा। यदि जीत जावे तो आपका और हार जावे तो मेरा। राजकुमार ने दो लाख की बाजी लगा दी और वह विजयी हुआ। उसने धन्यकुमार को अपना मित्र बना लिया। धन्यकुमार ने मेढे के दाम नहीं लेने का आग्रह किया किन्तु अरिमर्दन राजकुमार ने यह स्वीकार नहीं किया। धन्यकुमार ने कहा राजकुमार! हार–जीत जहाँ हो वह काम यदि त्यागे तो कीमत ले सकता हूँ। राजकुमार ने यह बात मान ली।

धन्यकुमार घर आया और उसने नगरवासियो की ठाठ से मिजवानी की। बचा पैसा गरीबो मे बाट दिया। तीनो भाई देखते रह गये। वे आपस मे कहने लगे मेढा लडकर थका हुआ था। उसे लडने का अनुभव था। अन्यथा धन्यकुमार के होश उड जाते। उन्होने तीसरी बार फिर परीक्षा करने के लिए कहा। उन्होने हट पूर्वक पिता से सौ तोले स्वर्ण ले लिया। इस बार कपडा लेकर वे बाजार गये। तीनो मे एक शौच के लिए चला गया। एक तमाशा देखने निकल गया और तीसरा ऊघने लगा। कोई मन चला आया और पोटली उठा ले गया। तीनो पछताते हुए लौट आये। पिता ने अब चुप होकर घर रहने को कहा।

इधर पिता ने धन्यकुमार को कवाडी के पास से कोई काष्ठ की वस्तु लेने भेजा। वह गया और दयार्द्र भाव से एक अशरफी मे एक चारपाई ले आया। वह चारपाई एक कजूस सेठ की थी। वह उसी खाट पर मरा था। किसी मजदूर ने भी उसमे हाथ नही लगाया। जैसे–तैसे धन्यकुमार घर लाया तो तीनो भाई झगड पडे। उन्होने चारपाई घर के भीतर नही जाने दी। झगडे मे चारपाई नीचे गिरी। उसके पाये फट गये और उन पायो से हीरे मोती निकले। एक आश्चर्य यह भी हुआ कि अन्य कोई भी उन हीरो को उठा नही पाता था। ज्यो ही उठाये जाते कि वे ककर बन जाते थे। केवल धन्यकुमार ही उन्हे उठा पाता था। आकाशवाणी भी हुई कि इनका अधिकारी धन्यकुमार है। अन्य कोई भी इनका भागीदार नही है।

पुण्य का चमत्कार देखकर लोगो ने धन्यकुमार का जय जयकार किया। उसने नगरवासियो को दावत दी। बाग लगाये, मन्दिर बनवाये। एक दिन

धन्यकुमार एक सेठ के यहाँ गया। उसकी एक हवेली मे धूल भरी थी। सेठ का पुत्र उसे फेकना चाहता था। धन्यकुमार ने कहा मुझे दे दो मै उठवा लेता हूँ। बोलो क्या लोगे। सेठ के पुत्र ने पॉच अशर्फियॉ माग ली और धन्यकुमार भी उस स्वर्णधूलि को ले आया। पिता धनसार कुपित हुआ। धनदत्तादि भाई भी कुपित हुए। कुछ दिन बाद उस धूलि का खरीददार आया और मुँहमागा दाम दे गया। धूलिवाले सेठ को धन्यकुमार ने कुछ पैसा देना चाहा किन्तु बेचे हुए माल का पैसा लेना जूठन खाने के समान समझकर सेठ ने पैसा लेने से इनकार कर दिया।

धन्यकुमार ने इस धन से एक सर्वहितकारिणी सस्था खोल दी जिससे सभी प्रसन्न हुए। राजा ने उसे नगर सेठ की उपाधि दी। धनसार प्रसन्न हुआ किन्तु भाई अप्रसन्न। भाइयो ने यहॉ तक कि धन्यकुमार को मार डालने की ठान ली। भोजाइयो ने धन्यकुमार को बाहर चले जाने के लिए कहा भी किन्तु नही माना। भाइयो के साथ सोया और एकाएक अर्ध रात्रि के समय घर से निकल गया।

रात भर चलता रहा। सबेरा हुआ। एक जगह बैठ गया। एक किसान आया और वह भी बैठ गया। घर से किसान का भोजन आया। उसने धन्यकुमार से भोजन करने को कहा। उसने बिना श्रम किये भोजन करना ठीक नही समझा और किसान ने इसे भोजन कराये बिना खुद खा लेना उचित नहीं जाना। दोनो हल चलाने लगे। कुछ दूर ही हल चलाया था कि भूगर्भ से धन निकला। ध
न्यकुमार ने वह सब किसान को दे दिया और दोनो ने सानन्द रोटी खायी। धन्यकुमार जब चलने लगा तो किसान ने वह धन साथ ले जाने को कहा किन्तु खेत जिसका है धन उसी का है कहकर धन्यकुमार आगे बढ गया। किसान ने वह धन राजा को सोप दिया और धन्यपुर नामक नया ग्राम बासाये जाने की उसने भावना व्यक्त की।

चलते–चलते धन्यकुमार नर्मदा तट पर आया और ठण्डी छाव मे कुछ देर बैठा ही था कि उसे नींद आ गयी। उसे सुनाई दिया कि उठो एक शव बहता आ रहा है, उससे धन मिलेगा। वह झट उठा और उसने उसे पकड लिया। शव की एक जाघ सिली थी। उसने उसे फाडा और उसे धन मिला। सच है पुण्यशाली का लक्ष्मी साथ नहीं छोडती। वह जहॉ गया सम्मान पाता रहा।

चलते–चलते वह उज्जयिनी आया। यहॉ का राजा एक ऐसे मत्री की खोज मे था जो प्रजा को एकता के सूत्र मे बॉध सके। परीक्षा के लिए तालाब के मध्य एक स्तम्भ खडा कर रखा था जिसे बाहर लाना था। धन्यकुमार सफल हुआ और वह मत्री बनाया गया। एक दिन धन्यकुमार नगर के बाहर घूमने निकला।

उसे आते हुए कुछ निर्वस्त्र लोग दिखाई दिये। उसे अपनी राज–व्यवस्था पर खेद हुआ। उनके पास आने पर धन्यकुमार ने उन्हें पहचान लिया और उनके चरण छुये। पिता ने उसे आशीष दी। सम्मान पूर्वक उनका नगर मे प्रवेश कराया। एकान्त मे धन्यकुमार ने दीनता का कारण पूछा। पिता ने कहा बेटा! तुम्हारे आने के बाद तुम्हारे भाइयो ने बडी दूकान की और नौकरो को सम्हला दी। दुकान मे घाटा लगा। दूसरे इन्होने रानी की चुराई गई करधनी खरीदी। फलस्वरूप सारा धन छीन लिया गया। जो शेष था। वह लेकर हम घर से निकले। राह मे चोरो ने चुरा लिया। बडे दु ख उठाते हुए यहाँ आये है। धन्यकुमार ने शव की जाघ मे निकली मणि पिता को भेट मे दी। वे सभी शान्ति से रहने लगे।

तीनो भाइयो ने पिता के पास रत्न देखकर उन रत्नो को घर के रत्न जाना। वे उनका बटवारा चाहने लगे। उन्होने पिता से कहा। पिता ने कहा कृतघ्न मत बनो। धन्यकुमार तो कुछ भी लेकर घर से नही आया। उसे अब क्यो सता रहे हो। यह ठीक व्यवहार नहीं। धन्यकुमार ने हमे गले लगाया है और दुख से उबारा है। तीनो भाइयो ने कहा– पिताजी वह घर से रत्न लेकर आया है और इसीलिए रात मे भागा था अन्यथा दिन मे आता। यह पैतृक–सम्पत्ति है। हमे तो अपना हिस्सा चाहिए। धन्यकुमार ने यह सुनकर सब कुछ छोडकर चले जाना ठीक समझा और रात्रि मे वहॉ से चल दिया। यहॉ से चलकर वह बनारस आया।

यहॉ धन्यकुमार की धैर्य परीक्षा हुई। अधिष्ठात्री देवी गगा ने शील–परीक्षा से प्रसन्न होकर इसे चितामणि रत्न दिया। धन्यकुमार ने कहा माता! मुझे इस पत्थर की आवश्यकता नही। देवी ने कहा जैसे चक्री आवश्यकता नही होने पर भी राजा की भेट स्वीकार करके उसका सम्मान रखता है ऐसे ही इसे स्वीकार कीजिये। इस प्रकार चितामणि रत्न लेकर यहॉ से धन्यकुमार राजगृह नगरी आया।

यहॉ एक नीरस उपवन मे विश्राम करते हुए सोचने लगा कि यदि उपवन हरा–भरा होता तो यहॉ पथिक विश्राम अवश्य करते। उसे नींद आ गई। इध र उपवन भी हरा भरा हो गया। इस दृश्य को देखकर माली ने सेठ को खबर दी और सेठ आकृष्ट होकर वहा आया। धन्यकुमार के जागने पर उस कुशुमपाल सेठ ने कहा आप भाग्यशाली है। सेठ रथ पर बैठाल कर गाजे बाजे के साथ धन्यकुमार को अपने घर ले गया। उसकी पुत्री सुश्री कुसुमश्री ने उसे भोजन करने बुलाया। उसने कुछ कार्य करके ही भोजन करने का अपना नियम बताया। सेठ ने विनम्रता पूर्वक कहा श्रीमान् मेरी पुत्री कुसुमश्री को विवाहियेगा। यहाँ

आपके योग्य यही कार्य है। धन्यकुमार ने कन्या को योग्य पाकर कहा सेठ जी! आप अपनी तैयारी करे। मेरी तैयारी मै स्वय कर लूगा। उसने चिन्तामणि रत्न से कहा और रत्न ने भी सुन्दर महल बना दिया। सोत्साह विवाह सम्पन्न हुआ।

एक दिन राजा का हाथी पागल हो गया। उसे पकडना था। धन्यकुमार ने पूछ पकडी और वह उस पर सवार हो गया तथा मद रहित होने पर उसे लाकर खम्भे से बॉध दिया। प्रसन्न होकर राजा ने अपनी पुत्री सोमश्री इसके साथ विवाह दी। अब एक पुरूष की दो भुजाओ के समान कुसुमश्री और सोमश्री आनन्द पूर्वक रहने लगी।

किसी छली ने गोभद्र सेठ से गिरवी रखी अपनी एक ऑख मागी। धन्यकुमार ने आकर कहा–सेठ के यहॉ अनेक ऑखे गिरवी रखी है। रिकार्ड चूहे खा गये। दूसरी ऑख दे और उसकी तौल के बराबर अपनी ऑख ले ले। उस ठगी ने सोचा ऑख देकर अन्धा नही होना है। उसने कहा हमे ऑख नहीं चाहिए और चला गया। गोभद्र सेठ ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री सुभद्रा का परिणय धन्यकुमार के साथ कर दिया और उनका बहुत उपकार माना।

कुछ दिन बाद राजगृह नगर की व्यवस्था बिगडी। राजा ने धन्यकुमार के परिवार को दोषी पाया और नगर से निकाल दिया। सभी राजगृह नगर आये। धन्यकुमार सम्मान पूर्वक सभी को घर लाया। उसके भाई उसका चिन्तामणि रत्न चाहने लगे। धन्यकुमार ने रत्न फेकना ठीक नहीं समझा और तीनो परस्पर मे लडेगे यह सोचकर उन्हे देना भी ठीक नही समझा। उसने साथ छोडकर चला जाना ही श्रेयस्कर जाना और वह उन सतियो को सोता हुआ छोड वहॉ से रात मे चल दिया। वह जिस किसी प्रकार कौशाम्बी नगरी आया।

कौशाम्बी के राजा शतानीक के पास एक मणि थी। उसका मूल्य और गुण बतानेवाले को उसने अपनी पुत्री देने का वचन दिया था। अन्य जौहरियो मे धन्यकुमार भी एक था। धन्यकुमार ने मणि देखकर कहा राजन्! यह चितामणि की जाति का बहुमूल्य महामणि है। जो इसे धारण करता है वह राजा विजयी होता है। वह प्रजासेवा मे लगा रहता है। जो इसे पाकर अनीति करने लगता है यह मणि नष्ट हो जाती है। अपने कथन के साक्ष्य मे उसने कहा चावल और मणि एक थाली मे रखे, पक्षी चावल नही चुगेगे। राजा ने ऐसा किया और उसका कहना सही पाया। राजा ने अपनी पुत्री सौभाग्यमञ्जरी उसे विवाह दी। यह धन्यकुमार की चौथी पत्नी थी। धन्यकुमार ने यहॉ एक नया नगर बसाया था।

राजगृही से सुभद्रा और उसके ससुर सास आदि सभी परिजन धन्यकुमार की खोज मे निकले। राह मे एक तालाब पर काम चल रहा था।

राह मे लुट जाने से भूख बुझाने वे सब काम करने लगे। एक दिन धन्यकुमार काम देखने आया और इन्हें पहचान गया। उसने प्रबंधक से कहा— इन्हे परेशान नहीं करना। जो कमी हो महल से ले लेने के लिए कहो। इधर उसने अपनी पत्नी कुसुममजरी से कहा। उसने भी सादर उन्हे घर ले आने के लिए कहा।

महल से सुभद्रा छाछ लाती रही। कुसुममजरी ने अन्य कुछ दिया तो नही लिया। एक दिन उसने कुसुममजरी को अपना परिचय दे दिया। धन्यकुमार ने कहा—तुम्हारा पति निष्ठुर है। जीवित है कि मरा कुछ कहा नहीं जा सकता। मिल भी गया तो तुम्हे प्यार देगा इसका क्या ठिकाना। यौवन व्यर्थ खोना ठीक नही। मेरी कामिनी बनकर रहो। सुभद्रा ने कहा—तुम जैसे को तो मै देखना भी न चाहूँगी। मै अपने स्नेह का पात्र हर एक को नही मानती। तुम्हारी दुष्कामना मुझसे पूर्ण न होगी। श्रम से पेट भरना अच्छा है। स्वतन्त्रता पूर्वक कष्ट सहना तप है। उसमे मुझे कष्ट नही। धन्यकुमार ने कहा—हठ छोडो। सीधे नहीं मानोगी तो शक्ति का प्रयोग करूँगा। सुभद्रा ने कहा—रे पुगव! भोग तो रोग है। इनसे बचो। जिनेन्द्र को भजो। मै ऐसा जानती तो तुम्हारे घर ही न आती।

धन्यकुमार ने अपना पूर्ववृत्त कहा जिसे सुनकर सुभद्रा ने पहचान लिया। उसने क्षमा याचना की और धन्यकमार ने उसे हृदय से लगा लिया। वापिस नही जाने दिया। वापिस न जाने से उसके शील पर आशका की गयी। नगर मे आकर परिजन चिल्लाये। सभी नागरिक इक्ट्ठे हुए और धन्यकुमार के पास गये। धन्यकुमार ने माता–पिता और भाइयो को महल मे जाने दिया। भाभियो ने राजा शतानीक से कहा कि आपके जनमाता ने हमारे परिजनो को मोह लिया है। राजा ने पॉचो को राजदरबार मे भेजने को लिखा। जब नही भेजा गया तब राजा ने युद्ध की घोषणा की। मत्री ने युद्ध रोककर धन्यकुमार और उन तीनो स्त्रियो से पृथक–पृथक बात की और उन्हे एक परिवार का जाना। राजा को खबर देकर मत्री ने युद्ध रुकवा दिया। धन्यकुमार ने राजा की न्याय–प्रियता की सराहना की और क्षमा याचना भी। भाभियो ने इस व्यवहार से देवर के प्रति प्रसन्नता व्यक्त की। सुभद्रा को महासती कहकर उसके शील की सभी ने बहुत सराहना की और सभी प्रसन्न हुए।

राजगृही मे कुसुमश्री, सोमश्री, सुभद्रा को और कौशाम्बी मे राजपुत्री सौभाग्यमन्जरी को विवाहने के बाद राजगृही के राजा श्रेणिक के विशेष आग्रह पर धन्यकुमार कौशाम्बी से राजगृही की ओर गया। राह मे लक्ष्मीपुर नगर मे गीतकला को वीणावादन मे पराजित कर उसे भी विवाहा। जितारि मत्री की पुत्री सरस्वती भी विवाही। इसी नगर मे एक पन्नामलक सेठ था। उसके चार

पुत्र और लक्ष्मीमती एक पुत्री थी। अपने धन के चार समान भाग करके घडे जमीन मे रखकर और लडको को बताकर सेठ मर गया। लडको ने घडे निकाले। घडो मे क्रमश मिट्टी, कागज, पशु अस्थि और रत्न निकले। छोटा रत्न पाकर खुश था किन्तु तीनो अप्रसन्न थे। लडने मरने को तैयार थे। धन्यकुमार ने कहा मिट्टी का अर्थ है उतने मूल्य की खेती, कागज का अर्थ है बहियो मे लिखा हुआ धन, और पशु–अस्थि का अर्थ है– गोधन। यह सुनकर तीनो प्रसन्न हुए और उन्होने अपनी लक्ष्मीमती का विवाह धन्यकुमार के साथ कर दिया।

इसी नगर मे एक वचक ने एक सेठ को ठगना चाहा। उसने जिस वस्तु पर वह हाथ रखे वह उसकी होगी ऐसा सेठ से वचन ले लिया था। उसकी कुदृष्टि थी सेठ की पुत्री गुणवती को हथियाने की। धन्यकुमार ने गुणवती और उसकी मा को छत पर खडा कर दिया। जीना बन्द करवा दिया और एक सीढी रख दी। उस वचक ने आकर छत पर गुणवती के पास जाने के लिए जीना बन्द देखकर सीढी पर हाथ लगाया। धन्यकुमार ने उसका हाथ पकड लिया और सीढी उसे दे दी। धन्यकुमार के इस बुद्धि कौशल पर सेठ प्रसन्न हुआ और उसने अपनी पुत्री गुणवती उसे ब्याह दी। सभी रानियो ने परामर्श पूर्वक सुभद्रा को पटरानी बनाया। राजगृही मे धूमधाम से प्रवेश हुआ।

एक दिन धन्यकुमार ने अपने तीनो भाई और भाभियो को आते देखा। वह उन्हे सादर घर ले गया। पूछने पर पता चला कि राजा ने उन्हे निकाल दिया है। इसने राजा के नाम पत्र देकर उन्हे माता–पिता के पास भेजा। वे नगर से निकले ही थे कि डकैतो ने उन्हे लूट लिया। अब उन्हे समझ मे आया कि धन्यकुमार को वे अब तक व्यर्थ दोष देते रहे। वे लौट आये। धन्यकुमार अब उनके साथ रहने लगा। माता–पिता को भी उसने अपने पास बुला लिया। अब पूरा परिवार प्रसन्नता का अनुभव करने लगा।

धन्यकुमार पूर्वभव मे अपुण्य नाम का व्यक्ति था। इसने मुनि को आहार दिये थे। उस दान का फल उसे इस पर्याय मे मिला।

सार बात यह है कि भाग्य ही सर्वत्र काम आता है। जो जैसा करता है वह वैसा पाता है। पुण्यात्मा भाग्यवान् होते है। उन्हे कही कष्ट नही होता। लक्ष्मी भी सर्वत्र साथ रहती है। पुण्यात्मा धन्यकुमार ने निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की और सुभद्रा ने चन्दना के सघ मे आर्यिका दीक्षा ली। दोनो कल्याण मार्ग पर बढ गये। सच है भाग्य फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम्।

[भाग्य परीक्षा से साभार]

सत्यघोष की सत्य परीक्षा

एक समय की बात है। भरतक्षेत्र के श्रीपद्मखण्ड नामक नगर मे एक सुदत्त वैश्य रहता था। उसकी कर्त्तव्यपरायणा सुमित्रा नाम की पत्नी थी। भद्रमित्र इन दोनो का पुत्र था। इकलौता होने से माता–पिता को बहुत प्यारा था। उसने धन कमाने के लिए बाहर जाने की पिता से आज्ञा चाही। पिता ने घर रहने को ही कहा। माँ ने भी कहा बेटा कमल रहित छोटे सरोवर के समान माँ को दीन बनाकर जाना उचित नही। भद्रमित्र ने कहा मैं तुम दोनो को मन–मन्दिर मे विराजमान किये हुए हूँ, कृपाकर आज्ञा दे। माता–पिता ने भी मगल–आशीष देते हुए आज्ञा दे दी। वह अपने साथियो के साथ रत्नद्वीप चला गया। वहाँ उसने सात रत्न प्राप्त किये। वहाँ से भद्रमित्र भरतक्षेत्र के सिहपुर नगर आया।

उस सिहपुर नगर मे राजा सिहसेन का राज्य था। उनकी रानी का नाम रामदत्ता था। वह रूप और शील की भण्डार थी। राजा का एक मत्री था। उसका नाम श्रीभूति था। वह जीवो मे कौवे के समान था। उसने गले मे छुरी बाँध रखी थी। उसका कहना था कि असावधानी से भी यदि मैने झूठ बोला तो मै स्वय इस छुरी से अपने प्राण ले लूगा। इसके सम्बन्ध मे यह प्रसिद्धि हो गयी थी कि यह झूठ नही बोल सकता। राजा उसे सत्यघोष नाम से पुकारते थे। भद्रमित्र सिहपुर पहुँच कर सत्यघोष के सम्पर्क मे आया। भद्रमित्र ने परिवार सहित सिहपुर मे रहने की जिज्ञाशा प्रकट की। सत्यघोष ने भी स्वीकृति दे दी। भद्रमित्र अपने रत्नद्वीप से लाये रत्न धरोहर के रूप मे सत्यघोष के पास रखकर माता–पिता को लाने चला गया।

घर से लौटने पर भद्रमित्र ने सत्यघोष से अपने रत्न वापिस मागे। सत्यघोष झल्ला कर बोला–तू कौन है? मै तुझे जानता भी नही। झूठ क्यो बोलता है? क्या कोई प्रेतबाधा हो गई है। तूने कभी रत्न देखे भी है कि कैसे होते है? भद्रमित्र ने फिर तो गरजकर कहा हाँ मैंने देखें है। मै वे रत्न रत्नद्वीप से लाया था।

सत्यघोष की सत्य बोलने की प्रसिद्धि ने भद्रमित्र को वहाँ नही टिकने दिया। पहरेदारो ने पागल ठहराकर वहाँ से मारते–पीटते हुए उसे निकाल दिया। भद्रमित्र ने राजदरबार मे भी कहा किन्तु वहाँ भी उसे सफलता हाथ नही लगी। दुखी होकर वह अब प्रतिदिन सबेरे–सबेरे चिल्ला–चिल्लाकर कहने लगा हे

सत्यघोष! झूठ बोलने से तेरा यश और धर्म दोनो नष्ट हो जावेगे। राजा की दया है जो तेरा यह ठाठ बना हुआ है। तेरी तृष्णा बुरी है जो कि चोरी करने के लिए भी तैयार हो गया। गरीब के रत्न हडपने से तेरी दुराशा कभी शान्त नहीं होगी। तेरा दुष्कर्म तुझे खा जावेगा।

एक दिन रानी रामदत्ता ने उसकी पुकार सुनी। वह विचारती है कि इसमे कुछ रहस्य है। उसने राजा से कहा—नाथ! भद्रमित्र पागल नही है। मैं इसकी जाँच करूँगी। इतने मे मत्री श्रीभूति सत्यघोष आया। रानी ने कहा—मत्री जी! सुनो मै आज आपके साथ शतरज खेलना चाहती हूँ। वह राजी हो गया। रानी ने छुरी जनेऊ और मुद्रिका जीत ली। रानी ने ये वस्तुएँ दासी को देकर मत्राणी से भद्रमित्र के रत्न की पोटली लाने को कहा। दासी वस्तुएँ लेकर गयी। उसने मत्री की घरवाली से कहा मत्री राज दरबार मे बैठे है। पहचान के लिए उन्होने अपनी ये तीनो वस्तुएँ भेजी है। उन्होने भद्रमित्र के रत्नो का पिटारा मगवाया है। उसने पिटारा दासी को दे दिया और दासी ने रानी को।

राजा ने रानी से रत्न पिटारा लेकर उसमे अपने रत्न मिलाये और भद्रमित्र को बुलवाकर उसे अपने रत्न पहिचान लेने को कहा। अपनी वस्तु को कौन नही पहिचानता? भद्रमित्र ने अपने रत्न उठा लिये। राजा भद्रमित्र की सन्तोषवृत्ति पर प्रसन्न हुआ और उसने उसे राजश्रेष्ठी पद देकर सम्मानित किया। सत्यघोष को कठोरदण्ड दिया तथा धम्मिल को मत्री बनाया। सत्यघोष आर्तध्यान से मरा और राजा के भण्डार मे सर्प हुआ।

भद्रमित्र ने असनाभिधान वन मे वरधर्म मुनि से उपदेश सुना और अब दिल खोलकर दान करने लगा। माता ने उसे रोका भी किन्तु वह रोकने से भी नहीं रूका। उसकी माता मरकर व्याघ्री हुई। इस व्याघ्री ने भद्रमित्र को खा लिया और मरकर वह राजा सिहसेन का सिहचन्द्र नामक पुत्र हुआ।

एक दिन राजा सिहसेन खजाने मे गया। वहाँ से वह लौट ही रहा था कि उस सत्यघोष के जीव सर्प ने पूर्व वैर वश उसे काट लिया। राजा मरकर अशनिघोष हाथी हुआ। रानी रामदत्ता ने आर्यिका के व्रत धारण कर लिये।

इस प्रकार श्रीभूति सत्यघोष को असत्य बोलने से न केवल मत्री पद से हाथ धोना पडे अपितु कठोर दण्ड भी भोगना पडा। इतना ही नहीं आगामी भव भी उसने बिगाड लिया। तृष्णा वश मरकर सर्प हुआ।

[समुद्रदत्त चरित्र पृ० १५–४५]

अद्‌भुत शील सुदर्शन का

बहुत पुरानी घटना है। जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र के आर्य खण्ड मे एक अग नाम का देश था। इस देश की चम्पापुरी एक नगरी थी। राजा धात्रीवाहन का यहाँ राज्य था। इस राजा की रानी का नाम था अभयमती। राजा भोगो मे लीन रहता था।

इसी नगरी मे एक वृषभदास नाम के सेठ रहते थे। जिनमति उसकी सेठानी थी। इसने एक रात पाच स्वप्न देखे थे। वे है– सुमेरु पर्वत, कल्पवृक्ष, अगाध समुद्र, निर्धूमाग्नि, और गगनविहारी विमान। सेठ और सेठानी विघ्न निवारणार्थ जिन मदिर गये। वहाँ उन्होने एक योगिराज के भी दर्शन किये। दोनो ने विनय पूर्व करवद्ध मधुर वाणी से 'नमोऽस्तु' की। मुनिराज ने धर्मवृद्धि वचन रूप आशीष दी। सेठ के द्वारा स्वप्नो का फल पूछे जाने पर मुनिराज ने कहा– जो पुत्र होगा वह सुमेरु पर्वत के समान धैर्यवान होगा, कल्पवृक्ष के समान दानवीर होगा, समुद्र के समान रत्नभण्डारी होगा, विमान के समान देव–बल्लभ होगा और निर्धूम अग्नि की भाँति कर्मरूप इन्धन को भस्म करके शिवपद प्राप्त करेगा। सेठ–सेठानी दोनो स्वप्न–फल सुनकर आनन्दित हुए।

गर्भ के नव मास पूर्ण होने पर जिनमती सेठानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र होने का सन्देश पाकर सेठ हर्षित हुआ। उसने सोत्साह दान दिया। गन्धोदक छिडककर सेठानी और उसके पुत्र का जन्मकालिक सस्कार किया। स्वत स्वभाव से सुन्दर होने से शिशु का नाम उन्होने 'सुदर्शन रखा। उसे लाल माणिक के कुण्डल पहिनाये। धीर–धीरे सुदर्शन युवा हुए।

इसी नगर मे एक सागरदत्त नाम के एक वैश्य और भी रहते थे। उनकी अति सुन्दर मनोरमा नाम की एक लडकी थी। सुदर्शन इस पर मुग्ध था। कपिल–मित्र को इसके भाव पढने मे देर न लगी। उसने सेठ वृषभदास को बता दिया। सेठ वृषभदास सोच–विचार कर ही रहा था कि योग ऐसा बना सागरदत्त सेठ स्वय प्रस्ताव लेकर आ गया। सेठ वृषभदास ने सहर्ष स्वीकृति दे दी और समारोह पूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ।

एक दिन नगर मे एक मुनिराज आये। सेठ वृषभदास उनसे धर्म का स्वरूप सुनकर ससार से भयभीत हुआ और उसने निर्ग्रन्थ दीक्षा ले ली। सुदर्शन ने मनोरमा मे अपने प्रेमभाव के होने की बात कही। महाराज ने कहा प्रीति और

अप्रीति पूर्वभव के सस्कारवाली होती है। हे सुदर्शन! पूर्वभव मे तुम भील थे और मनोरमा तुम्हारी पत्नी भीलिनी। भील की पर्याय से मुक्त होकर तुम कुत्ता हुए और कुत्ते की पर्याय से छूटकर ग्वाला। सरोवर से सहस्रदल कमल तोडते समय यह पुष्प किसी बडे पुरूष को समर्पण करने की उसने आकाशवाणी श्रवित की। उस ग्वाले के पुत्र ने वह पुष्प सेठ वृषभदास को समर्पित किया। वृषभदास ने अपने से बडा राजा बताकर उसे देने के लिए कहा। राजा ने अपने से बडा जिनराज को बताया और वह कमल उन्हे चढवाया। ग्वाल बालक को वृषभदास सेठ ने अपने घर काम करने के लिए रख लिया। एक दिन यह शीतकाल मे गाये चराने गया। जगल से वह लकडी लाया। राह मे उसे निर्ग्रन्थ साधु मिले। वे ध्यानस्थ थे। इस बालक ने साधु की शीत–बाधा दूर करने रातभर अग्नि जलाई। प्रात. साधु ने उस बालक को णमो अरिहताण मत्र कहकर कार्य करने के लिए कहा और बह बालक वैसा ही करने लगा। एक दिन एक भैस सरोवर के भीतर चली गयी। यह बालक णमो अरिहताण कहकर सरोवर मे कूदा और पानी के भीतर पडे काष्ठ के आघात से मर गया तथा वृषभदास सेठ के घर जन्मा, जो सुदर्शन नाम से विख्यात हुआ। भीलिनी मरकर भैसा हुई और इसके बाद इसी नगर मे धोबी की पुत्री। सुयोग पाकर वह क्षुल्लिका बनी। यह क्षुल्लिका मरकर तुम्हारी पत्नी मनोरमा हुई है। साधु से पूर्वभव सुनकर दोनो प्रसन्न हुए।

एक दिन सुदर्शन अर्हन्तदेव की पूजा करके लौट रहा था। कपिल ब्राह्मण की पत्नी उसे देखकर लुभा गयी। उसने अपनी दासी को सुदर्शन के पास भेजा। वह मित्र की सहायता करने के बहाने सुदर्शन को कपिल ब्राह्मण के घर ले गयी। कपिला के काम भरे वचन सुनकर सुदर्शन ने कहा– मै नपुसक हूँ। अन्य कोई उपाय न देखकर कपिला ने सुदर्शन का हाथ छोड दिया।

एक दिन वन विहार के लिए पुत्र के साथ जाती हुए मनोरमा को देखकर कपिला ने रानी अभयमती से पूछा–महारानी! सुदर्शन सेठ तो नपुसक है उसके यह पुत्र कैसे हो गया? मैने एकान्त मे उससे काम सेवन की प्रार्थना की थी। नपुसक होने से वह असमर्थ रहा। रानी ने कहा तुम ठगी गयी हो। अब रानी ने सुदर्शन से समागम करना चाहा। दासी ने कहा–रानी जी! सुदर्शन सेठ अपनी पत्नी के सिवाय अन्य स्त्रियो को देखना भी नही चाहता। ऐसे उदासीन व्यक्ति से हमे भी दूर ही रहना चाहिए। दासी के इन वचनो का कोई प्रभाव न पडा। दासी ने भी अपने स्वामी की आज्ञा मानना अपना कर्त्तव्य समझा। उसने अष्टमी–चतुर्दशी को श्मसानभूमि मे आत्मध्यान करते समय उठा लाने का निश्चय किया। उस समय सुदर्शन नग्न रहते थे।

उसने द्वारपालो को रानी का उपवास बताकर और पुतले की पूजा करके पारणा करना समझाकर प्रतिदिन पुतला लाना आरम्भ कर दिया और एक दिन वह जब सेठ ध्यानस्थ थे उन्हे ले आई और रानी को सौप दिया। रानी अभयमती हर्षित हुई। उसने अपने दोनो स्तन निर्वस्त्र कर लिये। सुदर्शन के मन मे काम भाव को जागृत करने के लिए जो भी उपाय उसके ध्यान मे आया, उसने निर्लज्ज होकर उसे किया। रानी ने जैसे–जैसे राग किया सेठ वैसे वैसे उत्तरोत्तर विरागभाव को प्राप्त होता रहा। तब आई इस विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए पण्डिता दासी ने कहा–रानी! त्रिया–चरित फैलाओ। रानी ने वैसा ही किया। उसने चिल्लाना आरम्भ किया। द्वारपाल आये। उन्होने सेठ सुदर्शन को पकड लिया। सुभट उसे राजा के पास ले गये। राजा ने कहा–ऊपर से सभ्य दिखाई देनेवाले इस दुष्ट के परिणामो मे खोटी लेश्या है। इसे चाण्डाल को सोपो। राजा की आज्ञा के अनुसार सुदर्शन को मारने के लिए चाण्डाल द्वारा किये गये तलवार के प्रहार सुदर्शन के गले के हार बन गये। यह देख लोग आश्चर्यचकित रह गये। राजा ने जब यह सुना तब वह तलवार लेकर स्वय मारने आया। उसी समय आकाशवाणी हुई कि सुदर्शन जितेन्द्रिय पुरूष है। अपने घर का ही निरीक्षण करो। यह सुनकर राजा ने भक्ति पूर्वक सेठ सुदरर्शन की स्तुति की तथा चरणो मे गिरकर क्षमा याचना की। सुदर्शन ने कहा राजन्! आपने तो कर्त्तव्य निर्वाह किया है। इसमे मेरे पूर्वोपार्जित पापकर्म का उदय ही प्रतिकूलता का कारण है।

घर आकर सेठ सुदर्शन ने मनोरमा से कहा–प्राणप्रिये! मै निर्वृत्ति रूप होना चाहता हूँ। मनोरमा ने कहा–जो गति तुम्हारी सो गति हमारी। यदि आप निर्ग्रन्थ साधु होगे तो मै आर्यिका व्रत लेकर आपके ही साथ विहार करूँगी किन्तु साथ नही छोडूँगी।

सेठ सुदर्शन जिन--मदिर गया। वहॉ उसने अर्हत्पूजा की। विमलवाहन योगीश्वर के दर्शन किये और दिगम्बर मुनि बन गया। मनोरमा भी छाया के समान पति का अनुशरण करती रही। वह भी आर्यिका बन गयी। उसने एक श्वेत वस्त्र शरीर ढकने के लिए रखकर शेष सर्व परिग्रह त्याग दिया। रानी अभयमती आप घात करके मरी और पटना मे व्यतरी हुई।

विपत्ति अकेली नही आती। मुनि सुदर्शन विहार करते हुए पटना आये। उस पण्डिता दासी ने यहॉ देवदत्ता वेश्या को सुदर्शन मुनि के साथ सगम करने को प्रेरित किया। देवदत्ता ने मुनिराज को पडगाह लिया। घर के भीतर ले जाकर मुनिराज के विराग पूर्ण उपदेश देने पर भी उसने उन्हे काम तुल्य शय्या पर

हठात् पटक लिया। वेश्या ने अनेक कुचेष्टाएँ की किन्तु मुनिराज काष्ठ के पुतले बन स्तब्ध रहे। वेश्या ने तीन दिन तक मुनि को विचलित करने का यत्न किया किन्तु उसे सफलता हाथ नहीं लगी। अन्त मे क्षमा याचना करते हुए मुनिराज की स्तुति की। मुनि ने कहा–जो स्वय को अरुचिकर हो उसे दूसरे के लिए भी आचरण न करे। सूर्य के लिए उछाली गयी धूलि अपने ही सिर पर आकर पडती है। मुनि के धर्मोपदेश को सुनकर दासी सहित देवदत्ता वेश्या आर्यिका बन गयी। मुनि श्मसान मे जाकर आत्म–ध्यान मे लीन हो गये।

रानी अभयमती का जीव–व्यतरी ने विमान की गतिरोध होने से नीचे सुदर्शन मुनि को ध्यानारूढ देखा। उसने अनेक उपसर्ग किये। मुनि ने उपसर्ग दशा मे घातिया कर्मों का नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त कर अर्हन्त हुए। पश्चात शेष कर्मों का नाश कर मोक्ष गये।

इस प्रकार शील धर्म को निर्वाहने मे सुदर्शन को एक नहीं अनेक परीक्षाएँ देनीं पडीं और सर्वत्र वे सफल हुए। धन्य है उनके शील की महिमा।

[सुदर्शनोदय महाकाव्य से साभार]

卐

जो आज तक किया नही जो आज तक अच्छा नही लगा, वह है धर्म। जो आज तक किया है, अच्छा लगा है वह है अधर्म।

हम सब ब्रहमा तो नही है किन्तु हम मे ब्रहमा जैसे अश है। पुरूषार्थ करने से हम भी एक दिन ब्रहमा बन जायेगे।

(आचार्य श्री विद्या सागर जी महाराज के प्रवचनो से)

नारि-संग में सुख नहीं

दो महान् शक्तियो के मध्य होनेवाले युद्ध मे एक नारी ही निमित्त बनकर सामने रही है। राम–रावण और ऐतिहासिक महाभारत युद्ध क्रमश सीता और द्रौपदी के कारण ही हुए हैं। जयकुमार और अर्ककीर्ति के युद्ध का कारण भी सुलोचना ही इतिहास में प्रसिद्ध है। सच है नारी–सग मे सुख नहीं है।

घटना बहुत पुरानी है। राजा जयकुमार हस्तिनापुर मे राज्य करते थे। वे दायलु और लोगो के हितैषी थे। सौन्दर्य मे वे कामदेव से भी बढकर थे। काशी के महाराजा अकम्पन की एक पुत्री थी। उसका नाम सुलोचना था। उसके नाम मे "यथा नाम तथा गुण" कहावत चरितार्थ होती थी। उसने जयकुमार के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुन रखा था। वह जयकुमार को चाहने लगी थी। वह जानती थी कि विवाह पिता की आज्ञा से ही स्त्रियाँ कर पाती है। अत उसने लोकलाज वश जयकुमार के पास कोई प्रेम–सन्देश नही भेजा था। वह सदा जिनेन्द्र का ध्यान किया करती थी। इधर जयकुमार भी सुलोचना की कोमल गुण रूप रज्जु से वैसे ही बँधा रहा जैसे काष्ठ को भेद कर निकल जानेवाला भ्रमर कली के बधन मे बधा रहता है। आतुर होते हुए भी जयकुमार ने महाराज अकम्पन से याचना नहीं की।

एक दिन महाराज जयकुमार सभा मे विराजमान थे। काशी–नरेश अकम्पन का दूत राज दरबार मे पहुचा। उसने कहा–राजन्। काशिराज अपनी पुत्री सुलोचना का स्वयवर कर रहे है। आप सादर आमन्त्रित है। जयकुमार भी आमत्रण पाकर अपने दलबल सहित काशी पहॅचा। काशी–नरेश ने उसकी यथोचित अगवानी की और योग्य स्थान मे रहने का प्रबन्ध किया।

भरत चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्त्ति को किसी ने सुलोचना–स्वयम्बर की सूचना दी। वह जाने के लिए तैयार हो गया। मत्री सुमति ने बिना निमत्रण जाना उचित नहीं समझा। उसके रोकने पर भी नहीं रुका। अर्ककीर्त्ति भी दल बल सहित चल दिया। काशी पहुँचने पर काशिराज ने उनके ठहरने की व्यवस्था राजभवन मे ही करवा दी।

इस प्रकार इस स्वयम्बर मे एक से एक बढकर राजकुमार आये। सुलोचना को आये हुए राजकुमारो का परिचय देने के लिए विद्यावती देवी से कहा गया। सुलोचना के स्वयवर मण्डप मे पधारने पर सभी राजकुमार प्रसन्न

होकर रोमाचित हो गये। विद्यादेबी ने एक–एक कर सभी राजकुमारो का परिचय कराया। सुलोचना सभी राजकुमारो से हटकर राजकुमार जयकुमार के पास वैसे ही पहुँच गयी जैसे कोयल वसन्त मे अन्य सभी वृक्षो को छोडकर आम के बौर पर पहूँच जाती है। जयकुमार को देखकर प्रसन्न चित्त से उसने वरमाला उसके गले मे पहना दी। जयकुमार का मुख प्रसन्न हो गया और अन्य राजकुमार म्लानमुख हो गये।

किसी ने अर्ककीर्ति के पास जाकर उसे भडका दिया। अकम्पन ने उसके साथ छल किया है कहकर इतना उसे उत्तेजित किया कि वह युद्ध करने तैयार हो गया। जयकुमार ने दूत भेजकर क्षमा याचना भी की किन्तु इसका उस पर विपरीत प्रभाव पडा। वह भी युद्ध के लिए तैयार हो गया। सुलोचना के कारण दोनो एक दूसरे के विरोधी बन गये। श्रीधर अर्यमा सुहृद, सुहेतु देवकीर्त्ति और जयवर्मा नामक उस समय के राजा प्रसन्नता पूर्वक अपनी अपनी सेना लेकर जयकुमार के पक्ष म आ मिले। विद्याधरो का मुखिया मेघप्रभ भी जयकुमार का सहायक बना। अर्ककीर्ति और जयकुमार के बीच युद्ध हुआ। जयकुमार ने नागपाश से अर्ककीर्त्ति को बॉध लिया।

सुलोचना का पिता अकम्पन भी झझट मे पड गया। जयकुमार की विजय से उसे प्रसन्नता तो हुई थी किन्तु राजा (भरत चक्री) का विरोध उसे रूचिकर न था। उसने अपनी दूसरी कन्या अक्षमाला अर्ककीर्त्ति को देकर आपत्ति को शान्त करना चाहा। वह अर्ककीर्त्ति के पास गया। उसने अपने द्वारा निरादरकारी उपस्थित किये गये प्रसग के लिए क्षमा याचना की। उसने कहा जयकुमार की चपलता के विषय मे चिन्ता न करे। दूध पीते समय बछडा गाय की छाती मे चोट मारता है फिर भी गाय अप्रसन्न न होकर दूध ही देती है। चचल घोडा घुडसवार को गिरा देता है तो क्या घुडसवार उसे मारता है। बालक नासमझी से राजा के सिर पर लात मार देता है तो क्या राजा उस पर कोप करता है? नही। जयकुमार बालक है और आप बडे है। मेरा निवेदन है कि मेरी पुत्री अक्षमाला को आप स्वीकार करे। अकम्पन ने जयकुमार और अर्ककीर्त्ति का मेल करा दिया तथा सहर्ष अपनी कन्या अक्षमाला अर्ककीर्त्ति को विवाह दी।

इस प्रकार एक सुलोचना नारी के कारण जयकुमार और अर्ककीर्त्ति तो दुःखी हुए ही सुलोचना के पिता अकम्पन भी सन्तापित हुए। नारी का सग सुखकर नही। दूर रहना ही अच्छा है। इसीलिए सन्त इनसे सदा दूर रहते है।

[जयोदय महाकाव्य से साभार]